श्रीः

सिद्धांत सूत्र समन्वय

श्रीमान सेठ वंशीलाल गङ्गाराम,
काशलीवाल, नादगाव।

तथा

श्रीमान सेठ गुलाबचन्द खेमचन्दशाह,
सागली के प्रदत्त द्रव्य द्वारा मुद्रित।

सम्पादक—
श्रीमान पं० रामप्रसाद जी शास्त्री, बम्बई।

प्रथमबार ५००

वीर सं० २४७३

मूल्य स्वाध्याय

प्रकाशक—
दिगम्बर जैन पञ्चायत बम्बई,
[जुहारुमल मूलचन्द, स्वरूपचन्द हुकमचन्द द्वारा]

मुद्रक—
अजितकुमार शास्त्री,
प्रोप्रा:-अकलङ्क प्रेस मुलतान शहर।
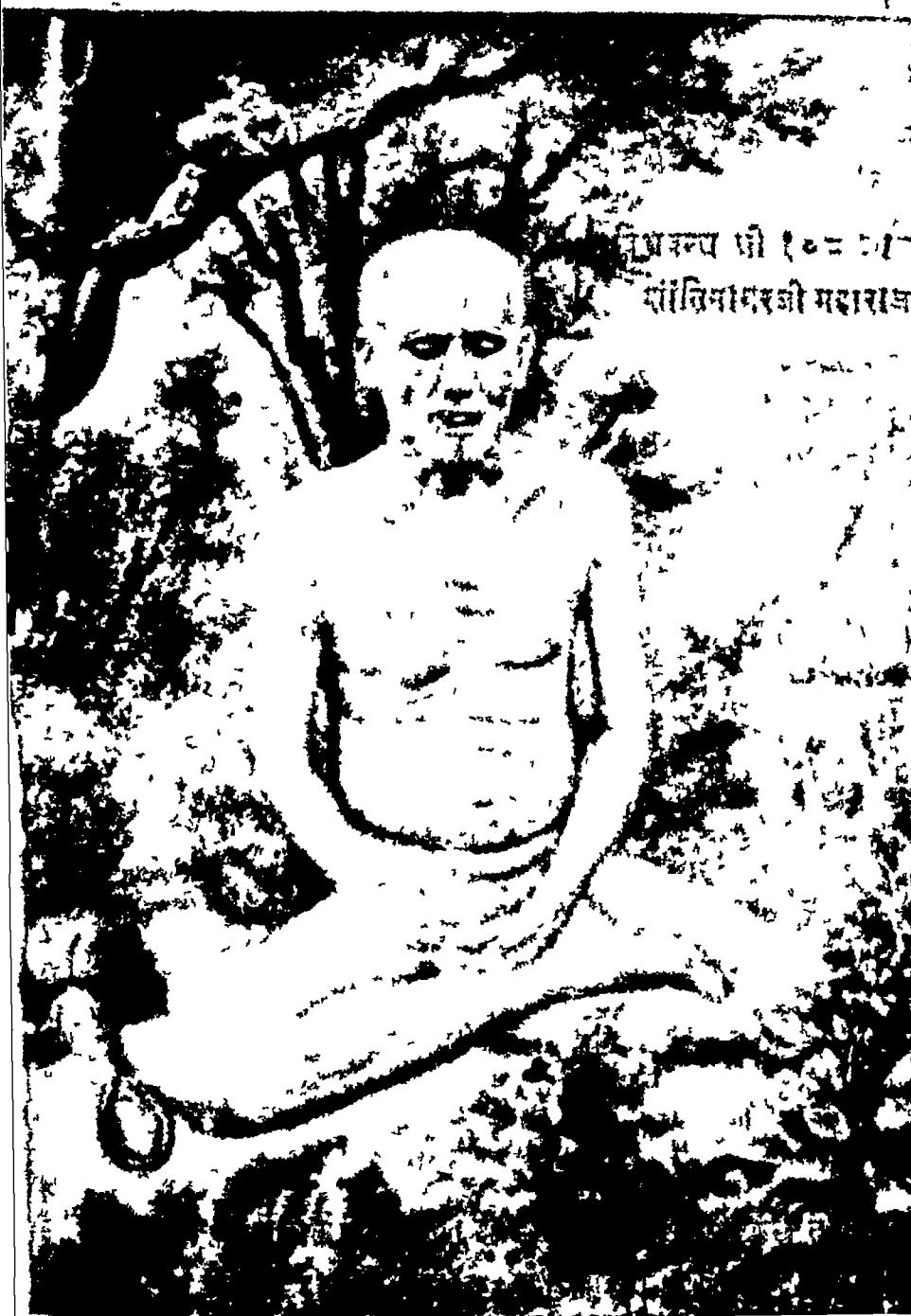
शांतिसागरजी महाराज

प्रस्तावना

अधिकार और उद्धार

इस षटखण्डागम सिद्धान्त शास्त्रको परमागम कहा जाता है, गोमट्टसार आदि अनेक शास्त्रो में इस षटखण्डागम का उल्लेख परमागम के नाम से ही किया गया है। यह सिद्धांत शास्त्र एकदेशज्ञाता आचार्यों द्वारा रचा गया है अत: अन्य शास्त्रों से यह अपनी विशिष्टता एवं असाधारणता रखता है। इसी लिये इसके पढ़ने पढ़ानेका अधिकार गृहस्थोको नहीं है, किन्तु वीतराग मुनिगण ही इसके पढ़ने के अधिकारी हैं। यह बात अनेक शास्त्रों में स्पष्ट की गई है। गृहस्थों को तो विशेष रूपसे प्रथमानुयोग एवं चरणानुयोगके शास्त्र और श्रावकाचार ग्रन्थो का स्वाध्याय करना चाहिये, उनका समधिक उपयोग और कल्याण उन्हींसे हो सकता है। हमने इस सम्बन्ध में एक छोटा सा ट्रैक्ट भी "सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययन का अधिकार" इस नाम से लिखा है जो छप भी चुका है, उसमे अनेक प्रमाणो से यह सिद्ध किया गया है कि गृहस्थो को इस सिद्धान्तशास्त्र के पढने का अधिकार नहीं है। इसी सम्बन्ध में एक विस्तृत ट्रैक्ट भी हम

लिखना चाहते थे, सामग्री का संग्रह भी हमने किया था परन्तु उसका उपयोग न देखकर उसमें शक्ति व्यय करना फिर व्यर्थ समझा।

हमारी यह इच्छा अवश्य थी कि इन ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार हो, और उनकी हस्तलिखित प्रतियां मुख्य मुख्य स्थानों में सुरक्षित रक्खी जाय। परन्तु 'वह मुद्रित कराये जाकर उनकी बिक्री की जाय' हम इसके सर्वथा विरोधी हैं। जब तक परमागम-सिद्धान्त शास्त्र ताडपत्रों में लिखे हुये मूडबिद्री में विराजमान थे, तब तक उनका आदर, विनय भक्ति और महत्व तथा उनके दर्शन की अभिलाषा समाज के प्रत्येक व्यक्ति में समधिक पाई जाती थी, परन्तु जब से उनका मुद्रण होकर उनकी बिक्री हुई है तब से उनका आदर विनय भक्ति और महत्व उतना नहीं रहा है, प्रत्युत ग्रन्थाशय के विपरीत साधनाओं का साधन वह परमागम बना लिया गया है, इसलिये आज भलेही उसका प्रचार हुआ है परन्तु लाभ और हित के स्थान में हानि ही अभी तक अधिक प्रतीत हुई है। जैसा कि वर्तमान विवाद और आन्दोलन से प्रसिद्ध है।

हमारे तीन ट्रैक्ट

सिद्धांतशास्त्र में सिद्धांत विपरीत समावेश देखकर हमें ट्रैक्ट लिखने पड़े हैं। एक तो वह जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दूसरा वह जो "दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण (प्रथम-भाग)" के नाम से बम्बई की दिगम्बर जैन पंचायत द्वारा छपा कर प्रसिद्ध किया गया है। जिसमें द्रव्यस्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति

और केवली कवलाहार इन तीनो बातोंका सप्रमाण एवं-युक्तियुक्त खण्डन है। और तीसरा ट्रैक्ट यह प्रस्तुत में पाठकों के सामने है।

सिद्धांतशास्त्र का अवलोकन

बहुत समय पहले जब हम जैनबिद्री (श्रवण बेलगोला) होते हुए मूडबिद्री गये थे तब वहां के पूज्य भट्टारक महोदय जी ने हमें बड़े स्नेह और आदर के साथ उन ताड़पत्रों में लिखे हुए सिद्धांत शास्त्रों के दर्शन कराये थे। कर्पूर दीपकों से उनकी आरती की गई थी। उस समय हमें बहुत ही आनन्द आया था और उनके दर्शनों से हमने रत्नों की प्रतिमाओं के दर्शन के समान ही अपने को सौभाग्यशाली समझा था। फिर आज से कई वर्ष पहिले जब परम पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने अपने समस्त शिष्य मुनि संघ सहित बारामती में चातुर्मास किया था तब स्वर्गीय धर्मवीर दानवीर सेठ राव जी सखाराम दोशी के साथ हम भी महाराज और उनके संघ दर्शन के लिये वहां गये थे। उस समय परम पूज्य आचार्य महाराज ने सिद्धांत शास्त्र को सुनाने का आदेश हमें दिया था। तब करीब पौन माह रहकर महाराज और संघ के समक्ष हस्त लिखित मूल प्रति पर से (उस समय (सिद्धांत शास्त्र मुद्रित नहीं हुये थे अत. उनका हिन्दी अर्थ भी अनुवादित नहीं था) प्रतिदिन प्रातः और मध्यान्ह में करीब १०-१२ पत्रों का अर्थ और आशय हम महाराज के समक्ष निवेदन करते थे। वह ग्रन्थाशय सुनाना हमारा परम गुरु के समक्ष एक

शिष्य के नाते क्षयोपशम की परीक्षा देना था। विशेष कठिन स्थल पर जहां हम रुककर पंक्ति का अर्थ विचारते थे वहां कुशाग्रबुद्धि, सिद्धान्त रहस्यज्ञ आचार्य महाराज स्वयं उस प्रकरण गत भाव का स्पष्टीकरण करते थे। वह वाचन और भी कुछ समय तक चलता परन्तु मुनि विहार मे रुकावट आ जाने से हैदराबाद (निजामस्टेट) के धर्म खाते के मिनिष्टर से मिलने के लिये जाने वाले दक्षिण प्रांतीय जैन डेप्युटेशन में हमें भी जाना पड़ा अतः वह सिद्धांत वाचन हमारा वहीं रुक गया। अस्तु।

जब गृहस्थों को सिद्धांत शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं तब यह वाचन कैसा? ऐसी शङ्का का उठना सहज है और वह बात समाचार पत्रों द्वारा उठाई भी गई है। और यह किसी अंश में ठीक भी कही जा सकती है। परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा कहना यह है कि हमारा वाचन हमारा स्वतन्त्र स्वाध्याय या पठन पाठन नहीं था, किन्तु परम गुरु आचार्य महाराज के आदेश का पालन मात्र था। जिसे एक अपवाद या विशेष परिस्थिति कहा जा सकता है। सर्व साधारण लोग अन्य शास्त्रों के समान प्रतिदिन के स्वाध्याय में सिद्धांत शास्त्र को भी रख लेते हैं अथवा शास्त्र सभा में उसका प्रवचन करते हैं वह सब पठन पाठन कहलाता है ऐसा पठन पाठन सिद्धांत शास्त्र का गृहस्थों के अधिकार से उसी प्रकार निषिद्ध है जिस प्रकार कि सर्व साधारण के समक्ष खुले रूप में क्षुल्लक को केशलुञ्चन अथवा लङ्गोटी हटाकर नग्न रहने का निषेध है।

परन्तु यह भरवाद तो दूसरी बात थी परमगुरु का आज्ञा—पालन मात्र था अब तो हमको इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का यथार्थ अवलोकन एवं मनन करना पड़ा है। यह विशेष परिस्थिति वहाँ की परिस्थिति से सर्वथा भिन्न है। यह स्वतन्त्र आन्दोलन का रूप है, फिर भी दिगम्बरत्व के एवं सिद्धांत के घातक समावेशों एवं ऐसी भ्रमों को दूर करने के लिये हमें बिना इच्छा के भी इन सिद्धांत शास्त्रों का अवलोकन करना पड़ा है। अन्यथा परमागम के अध्ययन की हमारी अभिलाषा नहीं है अपना क्षयोपशम दृढ़ धार्मिक एवं सद्भावना पूर्ण होना चाहिये फिर बिना सब ग्रन्थों के अध्ययन के भी सर्वाधिक बोध एवं परिज्ञान किया जा सकता है। अध्ययन तो एक निमित्त मात्र है ऐसी हमारी धारणा है। हमने यह भी अनुभव किया है कि सिद्धांत शास्त्र बहुत गम्भीर हैं उनमें एक विषय पर अनेक कोटियां प्रश्नोत्तर रूप में उठाई गई हैं उन सबों के परिणाम तक नहीं पहुंच कर अनेक विद्वान एवं हिन्दी भाषा भाषी सज्जन कोटियों तक ही वस्तुस्थिति समझ लेते हैं। इस प्रकार का दुरुपयोग भी उनकी पूर्ण जानकारी के बिना हो जाता है। अतः अनधिकृत विषय में अधिकार करना हितकारक नहीं है। मर्यादित नीति और प्रवृत्ति ही उपादेय एवं कल्याणकारी होती है। इस बात पर समाज को ध्यान देना चाहिये।

—बुद्धि का सदुपयोग—

महर्षियों ने भिन्न २ अनेक शास्त्रों की रचना एक एक विषय

क्रिम गणना में आ सकता है ? फिर भी हम लोग अपने पाण्डित्य का घमण्ड करें और जनता के समक्ष वीरवाणी अथवा वीर उपदेश कहकर अपनी समझ के अनुसार ऐसा इतिहास उपस्थित करें जो शास्त्रों के आशय से सर्वथा विपरीत है तो वह वास्तव में विद्वत्ता नहीं है, और न ग्राह्य है। किन्तु अपनी तुच्छ बुद्धि का केवल दुरुपयोग एवं जनता का प्रतारण मात्र है।

आजकल समाज में कतिपय संस्थायें एवं विद्वान ऐसे भी हैं जो अपनी समझ के अनुसार आनुमानिक (अन्दाजिया) इतिहास लिखकर ग्रन्थ कर्ता-आचार्यों के समय आदि का निर्णय देने और आगे पीछे के आचार्यों में किन्हीं को प्रामाणिक किन्हीं को अप्रामाणिक ठहराने में ही लगे हुए हैं। इस प्रकार की कल्पना पूर्ण खोज को वे लोग अपनी समझ से एक बड़ा आविष्कार समझते हैं।

इसी प्रकार आज कल यह पद्धति भी चल पड़ी है कि केवल १०० पृष्ठ का तो मूल एवं सटीक ग्रंथ है, उसके साथ १५० पृष्ठों की भूमिका जोड़कर उसे प्रसिद्ध किया जाता है उस भूमिका में ग्रंथ और ग्रंथकर्ता आचार्यों की ऐसी समालोचना की जाती है जिससे ग्रंथ और उसके रचयिता-आचार्यों की मान्यता एवं प्रामाणिकता में सन्देह तथा भ्रम उत्पन्न होता रहे।

जिन वीतराग महर्षियों ने गृहस्थों के कल्याण की प्रचुर भावना से उन ग्रन्थों की रचना की है, उनके उस महान् उपकार और कृतज्ञता का प्रतिफल आज इस प्रकार विपरीत रूप में दिया

जारहा है यह देखकर हमें बहुत खेद होता है। इस प्रकार के पाण्डित्य प्रदर्शन से समाज हित के बदले उसका तथा अपना अहित ही होता है। और जैन धर्म के प्रचार के स्थान में उसका ह्रास एवं विपर्यास ही होता है।

जो जैनधर्म अनादिकाल से अभी तक युग-प्रवर्तक तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, प्रत्याचार्य परंपरा से अविच्छिन्न रूप मे चला आ रहा है। और जिसका वस्तु स्वरूप प्रतिपादक, सहेतुक अकाट्य सिद्धान्त जीवमात्र के कल्याण का पथ प्रदर्शक है और पूर्वापर अविरुद्ध है उस धर्म मे उक्त विकृतिया व्युच्छित्ति के ही चिन्ह समझना चाहिये। अस्तु।

हमने अपने पूर्व पुण्योदय से जिनवाणी के दो अक्षरो का बोध प्राप्त किया है उसका उपयोग आगमानुकूल सरलता मे तत्त्व ग्रहण और पर प्रतिपादन रूप में करना चाहिये यही बुद्धि का सदुपयोग है और ऐसा सद्भाव धारण करनेमें ही स्व-पर कल्याण है। आशा है हमारे इस नम्र निवेदन पर संस्कृत पाठी तथा आंगलभाषा-पाठी सभी विद्वान् ध्यान देंगे।

श्रद्धेय धर्मरत्न पण्डित लालारामजी शास्त्री का आभार या आशीर्वाद

इस ग्रन्थ के लिखने के पहले हमने इस सम्बन्ध में जितने नोट किये थे उन्हें लेकर हम अपने बड़े भाई साहेब श्रीमान धर्मरत्न पूज्य प० लालाराम जी शास्त्री महोदय के पास गये थे। उन्होंने हमारे सभी नोटों को ध्यान से देखा, और कई बातें हमे

श्रीमान् सेठ वंशीलाल जी गंगाराम काशलीवाल
नांदगाव (नासिक)

इस ग्रन्थ की २५० प्रतियां आपके द्रव्य से प्रकाशित हुई हैं

बताई, साथ ही उन्हों ने यह बात बड़े आश्चर्य के साथ कही कि 'जीवस्थान और वर्गणाखण्डसमुच्चा गोम्मटसार द्रव्यवेद के निरूपण से भरा हुआ है, और षट्खण्डागम-सिद्धांत शास्त्र में कहीं भी द्रव्यवेदका वर्णन नहीं है ऐसा ये समझदार विद्वान भी कहते हैं' यह बहुत ही आश्चर्य की बात है। अस्तु।

अनेक गम्भीर संस्कृत शास्त्रों का अनुवाद करने के कारण श्रद्धेय शास्त्री जी का जैसा असाधारण एवं परिपक्व बढ़ा चढ़ा शास्त्रीय अनुभव है और जैसे वे समाज प्रतिष्ठित उद्भट विद्वान हैं उसी प्रकार उन्हें आगम एवं धर्म रक्षण की भी स्वाभाविक चिन्ता रहती है। प्रोफेसर साहेब के मन्तव्यों से तो वे उन्हीं के निजकी हानि समझते हैं परन्तु सिद्धान्त सूत्र में "संजद" पद जुड़ जाने एवं उसके ताम्रपत्र में स्थायी हो जाने से वे आगम में विपरीतता आने से समाज भर का अहित समझते हैं, इसका उन्हें अधिक खेद है। इस लिये जिस प्रकार "दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण प्रथम भाग" नामक ट्रैक्ट के लिखने के लिये हमें आदेश दिया था। इसी भान्ति यह ग्रंथ भी उन्हीं के आदेश का परिणाम है। अन्यथा हम दोनों में से एक भी ट्रैक्ट के लिखने में सफल नहीं हो पाते, कारण कि अष्ट सहस्री, प्रमेयकमल मार्तण्ड राजवार्तिकालंकार पञ्चाध्यायी इन ग्रन्थों के अध्यापन तथा संस्था एवं समाज सम्बन्धी दूसरे २ अनेक कार्यों के आधिक्य से हमें थोड़ा भी अवकाश नहीं है। फिर भी भाई साहेब की प्रेरणा से हमने दिन में तो नियत कार्य किये हैं, रात्रि में दो दो बजे से

किया। आगरा के प्रख्यात श्रीमान सेठ मगनलाल जी पाटणी आदि अन्य महानुभाव भी उपस्थित थे। कमेटी ने अपने अधिवेशन में कोल्हापुर पट्टाधीश श्रीमान पूज्य भट्टारक जिनसेन स्वामी की नायकता मे इस आशय का एक प्रस्ताव सर्वमतसे पास किया कि इस ग्रन्थ रचना के प्रसिद्ध होने के पीछे दो माह में भावपक्षी विद्वान अपना अभिप्राय सिद्ध करें। फिर यह कमेटी परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के आदेशानुसार सजद पद सम्बन्धी अपना निर्णय घोषित कर देगी। अस्तु।

जिनवाणी जीर्णोद्धारकी प्रबन्धक और ट्रस्ट कमेटी के सुयोग्य सदस्य श्रीमान सेठ वंशीलाल जी गङ्गाराम काशलीवाल, नादगांव (नासिक) निवासी, तथा श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी खेमचन्द जी सांगली (कोल्हापुर स्टेट) निवासी भी हैं। इन दोनों महानुभावों ने इस ग्रन्थ को सजद पद सम्बन्धी विवाद को दूर करने वाला एवं अत्युपयोगी समझकर कर स्वयं यह इच्छा प्रगट की कि इस ग्रन्थ की ५०० प्रति छपाई जावें और उनकी छपाई तथा कागज मे जो खर्च होगा वह हमारी ओर से होगा। तदनुसार यह ग्रन्थ उक्त दोनों महानुभावो के द्रव्य से प्रकाशित हो रहा है।

दोनों ही महानुभाव देव शास्त्र गुरु भक्त हैं। दृढ धार्मिक हैं। धर्म सम्बन्धी किसी प्रकार का अविनय और विरोध दोनों ही सहन करने वाले नहीं है। दोनों ही समाज प्रतिष्ठित और लक्षाधीश हैं। श्री० सेठ वंशीलाल जी काशलीवाल महाराष्ट्र प्रांत के प्रख्यात 'नगर सेठ' कहे जाते हैं। उनकी नादगावमे दो कपास

की गिरनी भी चल रही हैं। नांदगांव म्यूनिस्पालिटी के चेयरमैन भी आप बहुत वर्षों तक रह चुके हैं। वहां के सरकारी व नगर के कार्यों मे प्रधान रूप से बुलाये जाते हैं। धवल सिद्धांत ताम्रपत्र लिपि के लिये आपने ११०१) रु० प्रदान किये हैं। नांदगांव के विशाल जिन मन्दिर में एक वेदी और मानस्तम्भ बनवाने का सङ्कल्प आप कर चुके हैं इस कार्य मे करीब ११०००) रु० लगाना चाहते हैं। श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह सांगली के प्रसिद्ध व्यापारी हैं। जिन दिनों भा० दि० जैन महासभा के मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक और सं० सम्पादक के नाते श्रीमान श्रद्धेय धर्मरत्न प० लालाराम जी शास्त्री व हम पर डेफीमेशन (फौजदारी) केश बम्बई ऐसेम्बली के मेम्बर सेठ वालचन्द रामचन्द जी एम० ए० ने दायर किया था, उस समय इन्हीं श्री० सेठ गुलाबचन्द शाह ने केवल धर्म पक्ष की रक्षा के उद्देश्य से अपना बहुत बढा हुआ व्यापार छोडकर बेलगाव में करीब ८ माह रहकर हमे हर प्रकार की सहायता दी थी, वकीलों को परामर्श देना साक्षियो को तयार करना, आदि सभी कार्योंमे वे हमारे सहायक रहे थे। यह उनकी धर्म की लगन का ही परिणाम है। जिस प्रकार हम दोनो भाइयो ने अपने व्यापार की हानि उठाकर और अनेक कष्टो की कुछ भी परवा नहीं करके केवल धर्मपक्ष की रक्षा के उद्देश्य से निष्पृहवृत्ति से यह धर्म सेवा की थी उसी प्रकार शोलापुर, कोल्हापुर, पूना आदि (दक्षिण प्रांत) के प्रसिद्ध २ कोट्याधीश महानुभावों ने भी धर्म चिंता से अपनी शक्ति इस

केश मे लगाई थी। भारत भर के समाज की आखें भी उस केश की ओर लगी हुई थीं। जिस केश में बम्बई ऐसेम्बली के भू० पू० अर्थ सदस्य (फाइनेंस मिनिष्टर) और कोल्हापुर दीवान श्री० माननीय लट्ठे महोदय, फर्यादी (विपक्ष) के वकील थे उस बडे भारी केश में पूर्ण सफलता के साथ हमारी विजय होने में उक्त सभी महानुभाव और खासकर श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह सागली का अथक प्रयत्न ही साधक था। सांगली राज्य के चेम्बर आफ कामर्स के प्रेसीडेण्ट पद पर रहकर श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह ने वहा के व्यापारीवर्ग में पर्याप्त आकर्षण किया है। वहा की व्यापार सम्बन्धी उलझनों को आप बड़े चातुर्य से दूर कर देते हैं। श्री० शातिसागर अनाथाश्रम सेडवाल के आप ट्रष्ट कमेटी के मन्त्री हैं। धवल सिद्धात ताम्रपत्र लिपि के लिये आपने अपनी ओर से ५०००) और अपनी सौ० धर्मपत्नी की ओर से १०००) रु० दिया है। दक्षिण उत्तर के समस्त सिद्ध क्षेत्र व अतिशय क्षेत्रों की आप दो बार यात्रा भी कर चुके हैं। आपके ४ पुत्र हैं जो सभी योग्य हैं।

श्री० सेठ वंशीलाल जी नादगाव और श्री० सेठ गुलाबचन्द जी सागली दोनों ही अनेक धार्मिक कार्यों में दान करते हैं। श्री० गोपाल दि० जैन सिद्धात विद्यालय मोरेना (ग्वालियर स्टेट) के ध्रौव्य फण्ड में दोनों ने १००१) १००१) रु० प्रदान किये हैं। दोनों ही इस प्रख्यात सस्था के सुयोग्य सदस्य हैं। इस ग्रन्थ प्रकाशन में भी उन्हों ने द्रव्य लगाया है, इतने निमित्त से ही हम उनकी

आज जिन जातियो में उक्त प्रथायें प्रचलित हैं, उनमे ऐसी कोई भी जाति नहीं है, जो धार्मिक एवं आर्थिकदृष्टि से बढ़ी चढ़ी हो, प्रत्युत वे जातिया अधःपतन की ओर जा रही हैं।

इसी प्रकार समय २ पर आपने जो अपने विचार समाज के सामने रक्खे हैं, वे सभी शास्त्रीय एवं अकाट्य युक्तियों से युक्त रहे हैं।

आपने पञ्चाध्यायी राजवार्तिक तथा पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय इन सैद्धान्तिक ग्रन्थों की विस्तृत एवं गम्भीर टीकायें भी हैं। जो कि विद्वत्समाज में अतीव गौरव के साथ मान्य समझी गई हैं। देहली मे आर्य-समाजियो के साथ लगातार छह दिन तक शास्त्रार्थ करके आपने महत्व पूर्ण विजय प्राप्त की है। उसी के सम्मान स्वरूप आपको जैन समाज ने "वादीभ केसरी" की पदवी से विभूषित किया है। आज से करीब २० वर्ष पहिले आपने श्री गो० दि० जैन सिद्धात विद्यालय मोरेनाको उस हालत में संभाला था, जब कि इस विद्यालय का कोई धनी धोरी ही नहीं दीखता था आपसी दलबन्दी के कारण विद्यालय के कार्यकर्ता अध्यापक वर्ग विद्यालय से चले गये थे।

उच्च पदाधिकारी योग्य संचालक के नहीं मिलने के कारण विद्यालय के चलाने में अतीव कठिनाई महसूस कर रहे थे उस कठिन समय मे आपने आकर विद्यालय की बागडोर अपने हाथ में ली थी, और विद्यालय को आर्थिक सङ्कट से दूर कर विद्यालय के ध्येयके अनुकूल ही अभी तक बराबर विद्यालयको आप चला

रहे हैं। बीच २ में इसमें अनेक झगड़े और विघ्न तथा बाधायें भी खड़ी हो गईं, परन्तु उन सब बड़ी से बड़ी टक्करों से बचा कर विद्यालय को उच्च धार्मिक आदर्श के साथ आपने चलाया है। यह आपकी ही अनोखी विशेषता है। जो कि अनेक विकट सङ्कटों के आने पर भी आप सबको अपने ऊपर झेलते हुए निर्भीकता और दृढ़ता के साथ कार्य में सलग्न रह रहे हैं। वर्तमान में विद्यालय का प्रबन्ध व पढ़ाई आदि सभी बातें बड़े अच्छे रूप में चल रही हैं ग्वालियर दरबार से भी विद्यालयको १००) माहवार मिल रहा है। यह सब आपके सतत प्रयत्न का ही परिणाम है।

कई वर्षों तक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा परीक्षालय के मन्त्री भी आप रहे हैं। आपके मन्त्रित्व कालमें परीक्षालयने थोड़े ही समय में अच्छी उन्नति कर दिखाई थी।

ग्वालियर स्टेट में भी आपका अच्छा सम्मान है, आनरेरी-मजिस्ट्रेटके पद पर आप बहुत वर्षों तक रह चुके हैं। वर्तमानमें आप ग्वालियर गवर्नमेंट की डिस्ट्रिक्ट औकाफ कमेटी के मैंबर हैं। दोनों कर्मों के उपलक्ष्य में आपको श्रीमान हिज हाइनेस ग्वालियर दरबार की ओर से पोशाकें भेंट मे प्राप्त हुई हैं।

वंश परिचय

आप चावली (आगरा) निवासी स्वर्गीय श्रीमान् लाला तोतारामजी के सुपुत्र हैं, लाला जी गाव के अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं धार्मिक सज्जन पुरुष थे उनके छह पुत्रों में सब से बड़े पुत्र लाला रामलाल जी थे जो बाल ब्रह्मचारी रहे, ५५ वर्ष की आयुमें

उनका अन्त हो गया।'

उनके वर्तमान पुत्रों मे सब से बड़े लाला मिट्ठनलाल जी हैं। उन्हों ने अलीगढ मे पं० छेदालाल जी से सस्कृत का अध्ययन किया था वे भी बहुत धार्मिक हैं।

उनसे छोटे श्रीमान धर्मरत्न प० लालाराम जी शास्त्री है, आपने अनेकों संस्कृत के उच्चकोटि के ग्रथो की भाषा टीकायें बनाई हैं। आदि पुराण की समीक्षा की परीक्षा आदि ट्रैक्ट भी लिखे हैं जिनका समाज ने पूरा आदर किया है। तथा भक्तामर शतद्वयी नामक संस्कृत ग्रन्थ की बड़ी सुन्दर स्वतन्त्र रचना भी आपने की है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के सहायक महामन्त्री पद पर भी आप अनेक वर्षों रहे है, जैनगजट के सम्पादक भी आप रह चुके हैं। आप समाज मे लब्ध-प्रतिष्ठ व उद्भट विद्वान हैं और अत्यन्त धार्मिक है आप द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक हैं, इस समय आप मैंनपुरी में अपने कुटुम्बियो के साथ रहते हुये वहीं व्यापार करते हैं।

—आचार्य सुधर्म सागर जी महाराज—

श्रीमान परमपूज्य विद्वद्वंद्यपाद श्री १०८ आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज उक्त धर्मरत्न जी के लघु भ्राता थे, आचार्य महाराज ने संघ के समस्त मुनिराजों को सस्कृत का अध्ययन कराया था, सुधर्म श्रावकाचार सुधर्म ध्यान प्रदीप, चतुर्विंशिका इन महान संस्कृत ग्रंथों की कई हजार श्लोकोंमें रचना की है। ये ग्रन्थ समाज के हित के लिये परम साधन भूत हैं। महाराज ने

ग्रन्थ परिचय

षट्खण्डागम जैन तत्त्व एवं जैन वाङ्मय की वर्तमान में बड़ी है, अथवा यह कहना चाहिये कि जीव तत्त्व और कर्म सिद्धांत का यह सिद्धांत शास्त्र अद्भुत भण्डार है। इसमें सन्देह नहीं कि इस के पठन-पाठन का अधिकार सर्व साधारण को नहीं है। केवल मुनि सम्प्रदाय को ही इसके पठन-पाठन का अधिकार है। इसी आशय को लेकर पण्डित जी ने सिद्धांत शास्त्र के मुद्रण विक्रय और गृहस्थों द्वारा इसके पठन-पाठन का विरोध किया है। उन का यह मन्तव्य आगमानुकूल ही है। जबसे इन ग्रन्थों का

प्रकाशन हुआ है, तभी से दिगम्बर जैन धर्म की मुख्य २ मान्यताओं को अनावश्यक एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाने लगा है।

वर्तमान में दिगम्बर जैन विद्वानों में तीन प्रकार की विचार धारायें हैं, प्रायः तीनों प्रकार के विचार वाले विद्वान अपनी २ मान्यताओं का आधार षटखण्डागम को बतलाते हैं, कुछ लोगों का विचार है कि स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति तथा केवली कवलाहार दिगम्बर जैनागम से भी सिद्ध होते हैं और इसमें षटखण्डागम के सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प-बहुत्व प्ररूपणाओं में मानुषी के चौदह गुणस्थानों का वर्णन प्रमाण में देते हैं, परन्तु पांचवें गुणस्थान से ऊपर कौन सी मानुषी ली गई है, तथा दिगम्बर जैन आचार्य परम्परा ने कौन सी मानुषी के चौदह गुणस्थान बताये हैं? दिगम्बर जैन धर्म की ऐतिहासिक सामग्री एवं पुरातत्व सामग्री में क्या कहीं पर द्रव्यस्त्री के मोक्ष का उल्लेख मिलता है? अथवा कहीं पर कोई मुक्त द्रव्यस्त्री की मूर्ति उपलब्ध है? इत्यादि बातों पर विचार करने से यह स्थूल बुद्धि वालों को भी सरलता से प्रतीत हो जाता है कि जहां पर मानुषियों के छठे आदि गुणस्थानों का वर्णन है वह सब भाव की अपेक्षा से ही है, न कि द्रव्यापेक्षा से।

दूसरी प्रकार की विचार धारा वाले वे लोग हैं जो द्रव्यस्त्री की दीक्षा, तथा मुक्ति का निषेध तो करते हैं और षटखण्डागम में बताये गये, मानुषी के चौदह गुणस्थानों को भाव की अपेक्षा से

उद्देश्य श्रीमान न्यायालङ्कार जी का इस विद्वत्ता—पूर्ण ग्रन्थ के लिखने का है. इसके लिये मैं पण्डित जी की भूरि २ प्रशंसा करता हू. इन कृतियों केलिये समाज उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

रामप्रसाद जैन शास्त्री,

स्थान-दि० जैन मन्दिर. सम्पादक-दि० जैन सिद्धांत दर्पण,
भूलेश्वर कालबादेवी बंबई, (दि० जैन पंचायत बम्बई)
१-१-१९४७।

प्रकाशक के दो शब्द

अभी दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के तीनों भाग बम्बई की दिगम्बर जैन पंचायत ने ही अपने व्यय से छपाकर सर्वत्र विना मूल्य भेजे हैं। इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ को भी बम्बई पंचायत ही छपाना चाहती थी परन्तु कवलाना में नान्गांव निवासी श्रीमान सेठ बंशीलाल जी काशलीवाल तथा सांगली निवासी श्रीमान सेठ गुलाबचंद जी शाह ने ग्रन्थ के विषय को संयत पद निर्णायक समझकर इसे अत्युपयोगी समझा और बहुत सन्तोष व्यक्त किया दोनों महानुभावों की इच्छा थी कि यह ग्रन्थ हमारे द्रव्य से छपा कर बांटा जाय। बम्बई पचायत ने इन दोनों श्रीमानों की सदिच्छा को स्वीकार किया है। २५०-२५० प्रति दोनों सज्जनों के द्रव्य से छपाई गई हैं। इस धर्म प्रेम पूर्ण सहायता के लिये पचायत उक्त दोनों महानुभावों को बहुत धन्यवाद देती है। हम समझते हैं कि जिस सिद्धांत रक्षण के सदुद्देश्य से बम्बई पचायत

श्रीमन् धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री, मैनपुरी

उद्देश्य श्रीमान न्यायालङ्कार जी का इस विद्वत्ता—पूर्ण ग्रन्थ के लिखने का है, इसके लिये मैं पण्डित जी की भूरि २ प्रशंसा करता हूं, इन कृतियों केलिये समाज उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

रामप्रसाद जैन शास्त्री,

स्थान-दि० जैन मन्दिर, सम्पादक-दि० जैन सिद्धांत दर्पण,
भूलेश्वर कालबादेवी बंबई, (दि० जैन पंचायत बम्बई)
१-१-१९४७।

प्रकाशक के दो शब्द

अभी दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के तीनों भाग बम्बई की दिगम्बर जैन पंचायत ने ही अपने व्यय से छपाकर सर्वत्र विना मूल्य भेजे हैं। इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ को भी बम्बई पंचायत ही छपाना चाहती थी परन्तु कवलाना में नादगांव निवासी श्रीमान सेठ वंशीलाल जी काशलीवाल तथा सांगली निवासी श्रीमान सेठ गुलावचंद जी शाह ने ग्रन्थ के विषय को संयत पद निर्णायक समझकर इसे अत्युपयोगी समझा और बहुत सन्तोष व्यक्त किया दोनों महानुभावों की इच्छा थी कि यह ग्रन्थ हमारे द्रव्य से छपा कर बांटा जाय। बम्बई पंचायत ने उन दोनों श्रीमानों की सदिच्छा को स्वीकार किया है। २५०-२५० प्रति दोनों सज्जनों के द्रव्य से छपाई गई हैं। इस धर्म प्रेम पूर्ण सहायता के लिये पंचायत उक्त दोनों महानुभावों को बहुत धन्यवाद देती है। हम समझते हैं कि जिस सिद्धांत-रक्षण के सदुद्देश्य से बम्बई पंचायत

श्रीमन् धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री, मैनपुरी

ने इस संजद पद सम्बन्धी विवाद को दूर करने के लिये अपनी शक्ति लगाई है और पूर्ण चिता रखी है उसकी सफल समाप्ति श्रीमान् विद्वद्वर पं० रामप्रसाद जी शास्त्री, पूज्य श्री क्षुल्लक सूरिसि जी के सहेतुक लेखों से तथा इस "सिद्धांत सूत्र समन्वय" ग्रन्थ द्वारा अवश्य हो जायगी ऐसी आशा है। इस अपूर्व खोज के साथ लिखे गये गम्भीर ग्रन्थ निर्माण के लिये बम्बई पचायत श्रीमान् विद्यावारिधि वादीभ केसरी न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल जी शास्त्री की अतीव कृतज्ञ रहेगी।

सुन्दरलाल जैन,

अध्यक्ष दि० जैन पंचायत बम्बई।

(प्रतिनिधि—रायबहादुर सेठ जुहारुमल मूलचन्द जी)

मुद्रक के दो वाक्य

धवला के ९३वें सूत्रमें 'सञ्जद' पद न होने के विषय में विद्वान लेखक महोदय ने जो इस पुस्तक द्वारा स्पष्टीकरण किया है हमारी उससे पूर्ण सहमति है।

इस पुस्तक के छापने में सशोधन, छपाई तथा सफाई कह यथाशक्य सावधानी से ध्यान रक्खा गया है किन्तु टाइप पुराना अतएव घिसा हुआ होने के कारण अनेक स्थानो पर मात्रायें रेफ आदि स्पष्ट नहीं छप सके हैं। नये टाइप को यथासमय प्राप्त करने का भगीरथ प्रयत्न किया गया किन्तु सफलता न मिलसकी। पुस्तक की आवश्यकता बहुत शीघ्र थी अतः उस पुराने टाइप से

ही पुस्तक छापनी पडी। इस विवशता को पाठक महानुभाव ध्यान मे न रखकर छपाई की अनिवार्य त्रुटि को समालोचना का विषय न बनावेंगे ऐसी आशा है।

—अजितकुमार जैन शास्त्री।

प्रो.-अकलङ्क प्रैस, चूडी सराय मुलतान शहर।

आवश्यक निवेदन

इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ को ध्यान से पढें। मनन करने के पीछे ग्रन्थ के सम्बन्ध मे जैसी भी आपकी सम्मति हो निम्न लिखित पते पर शीघ्र ही भेजने की अवश्य कृपा करें।

श्रीमान विद्यावारिधि न्यायालङ्कार

पं० मक्खनलाल जी जैन शास्त्री,

प्रिंसिपलः—श्री० गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय,

मोरेना (ग्वालियर स्टेट)

निवेदकः-रामप्रसाद जी जैन शास्त्री,

(दिगम्बर जैन पचायत बम्बई की ओर से)

श्रीमान् विद्यावारिधि वादीभकेशरी, न्यायालङ्कार, धर्मधीर

प० मक्खनलाल जी शास्त्री

सम्पादक-जैन बोधक

द। शनिक उद्भट विद्वान, प्रभावक लेखक और इस सिद्धान्त
सूत्र समन्वय ग्रन्थ के रचयिता आप ही है

श्री वर्धमानाय नमः

सिद्धान्त सूत्र समन्वय

(सिद्धान्त शास्त्र-रहस्य समझने की तालिका (कुंजी)

ट्खण्डागम रहस्य और संजद पद पर विचार

अरहंत भासि यत्थंगणहरदेवेहि गन्थियं सव्वं
पणमामि भत्तिजुत्तं सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥
अर्हत्सिद्धान्नमस्कृत्य सूरिसाधूंश्च भावतः ।
जिनागममनुस्मृत्य प्रबन्धं रचयाम्यहम् ।

श्रीमत्परम पूज्य आचार्य धरसेण से पढ़कर आचार्य भूतबली पुष्पदन्त ने पट्खण्डागम सिद्धान्त शास्त्रो की रचना की है और उन्होने तथा समस्त आचार्य एव मुनिराजो ने मिलकर उन सिद्धान्त शास्त्रो की समाप्ति होने पर जेष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उनकी पूजा की थी तभी से उस पंचमी का नाम श्रुत पंचमी प्रसिद्ध होगया है ।'लिखित शास्त्र पहले नहीं थे श्रुतपंचमी से हि चले' यह कहना तो ठीक नहीं है, श्रुत पूजा (सिद्धान्त शास्त्र की

बहुत प्रयत्न और द्रव्य व्यय के साथ मुद्रित कराकर सर्वत्र भेज दिये हैं। ये सब बातें समाज के सामने आ चुकी हैं अतः उनपर कुछ भी लिखना व्यर्थ है।

परन्तु यहां पर विचारणीय बात यह है कि प्रो० हीरा लाल जी का मत है कि "श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायो मे कोई मौलिक (खास-मूल भूत) भेद नहीं है, द्रव्य स्त्री मोक्ष जा सकती है आदि बातें श्वेताम्बर मानते हैं दिगम्बर शास्त्र भी उसी बात को स्वीकार करते हैं" उसके प्रमाण में ये सबसे प्राचीन शास्त्र इन्हीं षट खण्डाग सिद्धान्त शास्त्रो को आधार बताते हैं, उनका कहना है कि "धवल सिद्धान्त के ६३ वे सूत्र मे सयत पद होना चाहिये और वह सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानो का प्रतिपादक है, अत. उस सयत पद विशिष्ट सूत्र से द्रव्य स्त्री के १४ गुणस्थान सिद्ध हो जाते हैं।" इस कथन की पुष्टि मे प्रोफेसर साहब ने उस ६३ वें सूत्र में सयत पद जोड़ने की बहुत इच्छा की थी परन्तु संशोधक विद्वानो मे विवाद खड़ा हो जाने से वे सूत्र में तो सजद पद नहीं जोड़ सके किंतु उस सूत्र के हिन्दी अनुवाद मे उन्होंने सजद पद जोड़ ही दिया। जो सिद्धान्त शास्त्र और दिगम्बर जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है। इन्हीं प्रोफेसर साहेब ने इस युग के आचार्य प्रमुख स्वामी कुन्दकुन्द को इस लिये अप्रमाण बताया है कि वे अपने द्वारा रचित शास्त्रों म द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान से ऊपर के सयत गुणस्थान नहीं बताते हैं। प्रो० सा० की इस प्रकार की समझी हुई निराधार एव हेतुशून्य

किसी आकांक्षा वश पक्षान्ध मोहित बुद्धि पर खेद और आश्चर्य होता है जहां कि दिगम्बर सिद्धान्त एवं आगम की रक्षा की कुछ भी परवा नहीं है। ऐसे विद्वानो का उत्तर देना भी व्यर्थ है जो ग्रन्थागम के विरुद्ध निराधार, उल्टा सीधा चाहे जैसा अपना मत ठोकते है। हमारा मत तो यह है कि प्रत्येक विद्वान् एवं विवेकी पुरुष को अपना उद्देश्य सच्चा और दृढ बनाना चाहिये जिस आगम के आधार पर हमारी धार्मिक मर्यादाएं एव निर्दोष अकाट्य सिद्धान्त सदा से अक्षुण्ण चले आ रहे हैं उस आगम मे अपनी आकांक्षा मानमर्यादा एव अपनी समझ सूझके दृष्टि कोण से कभी कोई परिवर्तन करने की दुर्भावना नहीं करना चाहिये। आगम के एक अक्षर का परिवतन (घटाना या बढ़ाना) भी महान् पाप है। आगम के विचार में जन समुदाय एवं बहुमत का भी कोई मूल्य नहीं है।

जिन दिनो चर्चासागर ग्रन्थ को कुछ बन्धुओ द्वारा अप्रमाण घोषित किया गया था, उस समय हमें बहुत खेद हुआ था क्योंकि चर्चा सागर एक सग्रह ग्रन्थ है, उस मे गोम्मट सार, राजवार्तिक, मूलाचार पूजासार, आदि पुराण आदि शास्त्रों के प्रमाण दिये गये हैं अतः वे सब अप्रमाण ठहरते हैं, इस लिए उस जन समुदय और विद्वत्समाज के बहुमत को विरुद्ध देखकर भी हमने कोई चिन्ता नहीं की, और उन महान् शास्त्रो के रक्षण का लक्ष्य रखकर " चर्चा सागर पर शास्त्रीय प्रमाण,, इस नाम का एक ट्रैक्ट लिखा था जो बम्बई समाज द्वारा मुद्रित होकर

सर्वत्र भेजा गया। उस समय हमारे पास समाज के ४-५ कर्णधारों के पत्र आये थे कि उक्त ट्रैक्ट को आप अपने नाम से नहीं निकालें अन्यथा राय बहादुर लाला हुलास राय जी जैसे तेरह पन्थ शुद्धाम्नाय वाले महानुभावों मे जो विशेष प्रतिष्ठा आप की है वह नहीं रहेगी, उत्तर मे हमने यही लिखा था कि हमारी प्रतिष्ठा रहे चाहे नहीं रहे, किन्तु आगमकी पूर्ण प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रहनी चाहिये। हमारे नाम मे निकलने मे उस ट्रैक्ट का अधिक उपयोग हो सकेगा। जहा आचार्य वचनो को अप्रमाण ठहरा कर उनकी प्रतिष्ठा भङ्ग की जा रही है वहां हमारी प्रतिष्ठा क्या रहती है और उसका क्या मूल्य है? श्री० राय बहादर लाला हुलास राय जी आदि सभी सज्जनों का वैसा ही धार्मिक वात्सल्य हमारे साथ आज भी है जैसा कि उस ट्रैक्ट निकलने से पहले था। प्रत्युत चर्चा सागर के रहस्य और महत्व को समाज अब समझ चुका है। अस्तु

आज भी उसी प्रकार का प्रसङ्ग आ गया है, सञ्जद पद का उस सिद्धान्त शास्त्र के मूल सूत्र में जुड जाना और उस का ताम्र पत्र जैसी चिरकाल तक स्थायी प्रति मे खुद जाना भारी अनर्थ और चिन्ता की बात है। कारण, उस के द्वारा द्रव्य स्त्री को उसी पर्याय से मोक्ष सिद्ध होती है यह तो स्पष्ट निश्चित है ही, साथ मे सवस्त्र मुक्ति, हीन सहनन मुक्ति, बाह्य अशुद्धि मे भी मुक्ति शूद्रादि के भी मुनिपद और मुक्ति प्राप्तिकी सम्भावना होना सहज होगी। एक अनर्थ दूसरे अनर्थ का साधन बन जाता है। वैसी

दशा मे परम शुद्धि मुनि धर्म एवं मोक्ष पात्रता, विना बाह्य शुद्धि के भी सर्वत्र दीखने लगेगी अथवा वास्तव मे कही भी नही रहेगी ये सब अनर्थ धवल सिद्धान्त के ९३ वें सूत्र मे संजद पद जोड देने से होने वाले हैं। फिर तो सिद्धान्त शास्त्र भी दिगम्बराचार्यों की सम्पत्ति नही मानी जाय गी। अत इस सिद्धान्त विघात की चिन्ता से ही हम को दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण (प्रथम भाग) नाम का ट्रेक्ट लिखना पडा था जो कि मुद्रित होकर सर्वत्र भेजा जा चुका है और आज इस ट्रैक्ट को लिखने के लिये भी बाध्य होना पडा है। श्री मान पूज्य क्षुल्लक सूरि सिंह जी महाराज श्री मान विद्वद्वर प० राम प्रसाद जी शास्त्री भी इसी चिंता वश लेख व ट्रैक्ट लिखने में प्रयत्नशील बन चुके है। और इसी चिंता वश बम्बई की धर्म परायण पञ्चायत एवं वहा के प्रमुख कार्य कर्ता श्री० सेठ निरञ्जन लाल जी, सेठ चांदमल जी बड़्जी सेठ सुन्दर लाल जी अध्यक्ष पचायत प्रतिनिधि राय बहादुर सेठ जुहार मल मूल चन्द जी सेठ वनसुख लाल जी काला, सेठ परमेष्टी दास जी आदि महानुभाव हृदय से लगे हुए हैं इन्हो ने और बम्बई पञ्चायत ने इन समस्त विशाल ट्रैक्टों के छपाने में और उभय पक्ष के विद्वनो को बुलाकर लिखित विचार (शास्त्रार्थ) कराने में मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक सब प्रकार की शक्ति लगाई है, इसके लिये इन सबो का जितना आभार माना जाय सब थोड़ा है। अधिक लिखना व्यर्थ है इसी संजद पद की चिन्ता ने विश्ववन्द्य, चारित्रचक्रवर्ती. परम पूज्य श्री १०८ आ० शान्तिसागर

जी महाराज् भी विशेप चिन्तित हो गये हैं, जो कि आगम रक्षा की दृष्टि से प्रत्येक सम्यक्त्व-शाली धर्मात्मा का कर्तव्य है। जिन को इस सञ्जद पद के हटाने की चिंता नहीं है उनकी दृष्टि मे फिर तो श्वेताम्बर और दिगम्बर मतो मे भी कोई मौलिक भेद प्रतीत नहीं होगा जैसे कि प्रो० हीरा लाल जी की दृष्टि मे नहीं है।

यहा पर इतना स्पष्ट कर देना भी आवश्यक समझते हैं कि जितने भी भाव-पक्षी (जो सञ्जद पद सूत्र मे रखना चाहते हैं) विद्वान हैं, वे सभी द्रव्य स्त्री को मोक्ष होना सर्वथा नही मानते हैं, और न वे श्वेताम्बर मत की मान्यता से सहमत है, उनका कहना है कि सूत्र मे सयत पद द्रव्य वेद की अपेक्षा से नहीं किन्तु भाव भेद की अपेक्षा से रख लेना चाहिए। परन्तु उनका कहना इस लिये ठीक नहीं है कि जो भाव वेद की अपेक्षा वे लगाते हैं वह उस सूत्र मे घटित नहीं होती है । वह सूत्र तो केवल द्रव्य स्त्री के ही गुण-स्थानो का प्ररूपक है, वहां सयत पद का जुडना दिगम्बर सिद्धान्त का विघातक है , आगम का सर्वथा लोपक है। वे जो गोमट्टसार की गाथाओ का प्रमाण देते हैं ते सब गाथाएँ भी द्रव्य निपरूक हैं। वे उन्हें भी भाव निरूपक बताते हैं । परन्तु वैसा उनका कहना मूल ग्रन्थ और टीका ग्रन्थ दोनों से सर्वथा बाधित है। यह बात ऐसी नहीं कि जो लम्बे चौड़े प्रमाण शून्य लेख लिखे जाने से अथवा गुणस्थान मार्गणा अनुयोग, चूर्णिसूत्र

उच्चारणसूत्र आदि सैद्धान्तिक पदों का नामोल्लेख के प्रदर्शन करने मात्र से यों ही विवाद में बनी रहे। विचारकोटि में आने पर सबों की समझ में आ जायगी। और उस तत्व के अनेक विशेषज्ञ जो हिंदी भाषा द्वारा गोमट्टसार का मर्म समझते हैं वे भी सब अच्छी तरह समझ लेंगे जो निर्णी। बात है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकती। श्रीप० पन्नालाल जी सोनी, श्री० प० फूलचन्द जी शास्त्री प्रभृति विद्वान इन गोमट्टसारादि शास्त्रों के ज्ञाता हैं, फिर भी उनके ग्रन्थाशय के विरुद्ध लेख देखकर हमे कहना पड़ता है कि या तो वे अब पक्ष-मोह मे पड़ कर निष्पक्षता और आगम की भी परवा नहीं कर रहे हैं, और समझते हुए भी अन्यथा प्रतिपादन कर रहे हैं, अथवा यदि उन्हों ने गोमट्टसार और सिद्धान्त शास्त्रों को केवल भाव भेदनिरूपक ही समझा है तो उन्हें पुन उन ग्रन्थों के अन्तस्तत्व को गवेषणात्मक बुद्धि से अपने दृष्टि कोण को बदल कर मनन करना चाहिये। हम ऐसा लिख कर उन पर कोई आक्षेप करना नहीं चाहते हैं परन्तु ग्रन्थों की स्पष्ट कथनी को देखते हुए और उस के विरुद्ध उक्त विद्वानो का कथन देखते हुए उपर्युक्त दो ही विकल्प हो सकते हैं अत. आक्षेप का सर्वथा अभिप्राय नहीं होने पर भी हमे वस्तु स्थिति वश इतना लिखना अनिच्छा होते हुए भी आवश्यक हो गया है। इस लिये वे हमे क्षमा करें।

संजद् पद् पर विचार

धवल सिद्धान्त शास्त्र के ६३ वें सूत्र। मे संजद पद नहीं है क्यो कि वह सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानो का प्रतिपादक है। परन्तु भावपक्षी सभी विद्वान एक मत से यह बात कहते हैं कि समस्त षट् खण्डागम मे कहीं भी द्रव्य वेद का वर्णन नहीं है, सर्वत्र भाववेद का ही वर्णन है। द्रव्य स्त्री के कितने गुणस्थान होते हैं ? यह बात दूसरे ग्रन्थो से जानी जासकती है, इस सिद्धान्त शास्त्र से तो केवल भाववेद मे सभव जो गुणस्थान है उन्हीं का वर्णन है। प० पन्नालाल जी सोनी० फूलचन्द जी शास्त्री प० जिनदास जी न्याय तीर्थ, आदिसभी भावपक्षी विद्वान सबस मुख्य बात यही बताते हैं कि समूचा सिद्धातशास्त्र भाव निरूपक है, द्रव्य निरूपक वह नही है।

सञ्जद पद को ६३ वें सूत्र मे रखने के पक्ष मे भाववेदी विद्वानो के चार प्रख्यात हेतु इस प्रकार है—

१—समूचे सिद्धान्त शास्त्र मे (षट् खण्डागम में) सर्वत्र भाव वेद का ही वर्णन है, द्रव्य वेद का उसमे और गोमट्टसार में कहीं भी नहीं है ?

२—आलापाधिकार में भी सर्वत्र भाव-वेद का ही वर्णन है क्योंकि उसमे मानुपी के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं ?

३—यदि षट् खण्डागम मे द्रव्य वद का वर्णन होता तो सूत्रों

मे उस का उल्लेख पाया जाता, परन्तु सूत्रो मे द्रव्य वेद के नाम से कोई भी कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता है। अत षट् खण्डागम-सिद्धान्त शास्त्र मे द्रव्य वेद का कथन सर्वथा नहीं है ?

४—टीकाकारो ने जो द्रव्य वेद का निरूपण किया है वह मूल कथन से विरुद्ध है, उन्हो ने भूल की है।

ये चार हेतु प्रधान हैं जो सञ्जद पद के रखने मे दिये जाते हैं।

इन चारो बातो के उत्तर मे जो हम षट् खण्डागम शास्त्र के अनेक सूत्रो और धवला के प्रमाणो से यह सिद्ध करेंगे कि उक्त सिद्धान्त शास्त्र मे और गोमट्टसार मे द्रव्य भेद का भी मुख्यता से वर्णन है और भाव वेद के प्रकरण मे भावभेद का वर्णन है।

उपर्युक्त बातों के उत्तर में हम जो प्रमाण देंगे उन्हे समझने के लिये हम यहा पर चार तालिकाएँ देते हैं, उन तालिकाओ (कुञ्जी) से षट् खण्डागम की कथन पद्धति, प्रकरणगत सम्बन्ध और क्रमवद्ध विवेचन का परिज्ञान पाठकों को अच्छी तरह हो जावेगा।

षट् खण्डागम के रहस्य को समझने के लिये चार तालिकाएँ (कुञ्जी)

वे चार तालिकाएँ हमने छह श्लोकों में बना दी है वे इस

प्रकार हैं—

गुणसंयमपर्याप्तियोगालापाश्च मार्गणाः ।
प्ररूपिता. यथापात्रं द्रव्यभावप्रवेदिभिः ॥१॥
गत्या सार्धं हि पर्याप्ति. योगः कायश्च यत्र वै ।
द्रव्यवेदस्तु तत्र स्याद्भावश्चान्यत्र केवलम् ॥२॥
पर्याप्तालापसामान्याऽपर्याप्तालापकास्त्रयः ।
ओघादेशेषु भावेन द्रव्येणापि यथायथम् ॥३॥
मार्गणासु च यो वेदो मोहकर्मोदयेन सः ।
सूत्रेषु द्रव्यवेदस्य नामोल्लेखस्ततः कथम् ॥४॥
गत्यादिमार्गणामध्ये गुणस्थानसमन्वयः ।
देहाश्रयाद्विना न स्याद् द्रव्यवेदः स एव च ॥५॥
सूत्राशयानुरूपेण धवलायां तथैव च ।
गोमट्टसारेऽपि सर्वत्र द्रव्यवेदः प्ररूपितः ॥६॥

(रचयिता—मक्खनलाल शास्त्री)

इनमे पहले श्लोक का यह अर्थ है कि—

गुणस्थान, संयम, पर्याप्ति, योग, आलाप, और मार्गणाएँ ये सब द्रव्य और भाव विधान के विशेषज्ञो (आचार्यों) ने द्रव्य शरीर की पात्रता के अनुसार ही प्ररूपण की हैं। अर्थात चारों गतियो में जैसा जहां शरीर होगा, जैसी पर्याप्ति (और अपर्याप्ति) होगी, जैसा योग—काययोग या मिश्रकाय होगा और जैसा आलाप—पर्याप्त, अपर्याप्त, सामान्य-होगा उसी के अनुसार उसमें गुणस्थान और संयम रह सकेंगे। इसी सिद्धान्त को लेकर

, यथा सम्भव भाववेद और द्रव्यवेद दोनों की विवक्षा से वर्णन किया गया है।

इस श्लोक से यह बात प्रगट की गई है कि आलापों में पर्याप्त अपर्याप्त और सामान्य इन तीन बातों की प्रधानता से कथन है उनमें जहां तक जो सम्भव गुणस्थान उपयोग पर्याप्ति प्राण आदि हो सकते हैं वे सब ग्रहण कर लिये जाते हैं, उस ग्रहण में कहीं द्रव्यवेद की विवक्षा आ जाती है, कहीं पर भाववेद की आ जाती है।

इस कथन से वह शंका और समझ दूर हो जाती है जोकि यह कहा जाता है कि "आलापों में भाववेद का ही सर्वत्र वर्णन है मानुषी के चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं" वह शङ्का इस लिये नहीं हो सकती है कि आलापो में ही मानुषी की अपर्याप्त अवस्था में पहला दूसरा ये दो गुणस्थान बताये गये हैं, भाव की अपेक्षा ही होती तो सयोग गुणस्थान भी बताया जाता। अतः सर्वत्र आलापो में भाववेद का ही कथन है यह कहना असङ्गत एव ग्रन्थाधार से विरुद्ध है।

चौथे श्लोक का अर्थ यह है कि—

मार्गणाओं में एक वेद मार्गणा भी है, वहां मोहनीय कर्म का भेद नोकषाय-जनित परिणाम रूप ही वेद लिया गया है। और कहींपर-गुणस्थान मार्गणाओ मे द्रव्यवेद का ग्रहण नहीं है फिर षट् खण्डागम सूत्रों मे द्रव्य-वेद का नामोल्लेख करके कथन कैसे किया जासकता है ? अर्थात् षट् खण्डागम मे गुण-

स्थान और मार्गणाओ का ही यथायोग्य समन्वय बताया गया है। उन में द्रव्यवेद कहीं पर आया नहीं है। इस लिये प्रतिज्ञात क्रम वर्णन पद्धति में द्रव्यवेदो का नामोल्लेख किया नहीं जा सकता है।

इस कथन से—षट खण्डागम में यदि द्रव्यवेद का कथन होता तो सूत्रो में द्रव्यवेद का उल्लेख होता–इस शका और समझ का निरसन हो जाता है।

फिर यह शका और बढ़ जाती है कि जब द्रव्यवेद का सूत्रो मे नामोल्लेख नहीं है तब उसकी विवक्षा से उन मे कथन भी नहीं है केवल भाववेद की विवक्षा से ही कथन है इस शका का निरसन पाचवें श्लोक से किया गया है।

पांचवें श्लोक का अर्थ यह है कि—

गति, इन्द्रिय काय योग इन मार्गणाओ में जो गुणस्थानो का समन्वय बताया गया है वह द्रव्य शरीरो के आधार से ही बताया गया है। बिना द्रव्य शरीरो की विवक्षा किये वह कथन बन ही नहीं सकता है और द्रव्य शरीर ही द्रव्य वेद का अपर पर्याय है। द्रव्य शरीर और द्रव्य वेद दोनो का एकही अर्थ है। इस से यह बात सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यवेद का सूत्रो मे नामोल्लेख नही होने पर भी उसका कथन पर्याप्ति आदि के कथन में द्रव्यवेद का कथन गर्भित हो जाता है। अत एव द्रव्यवेद की विवक्षा पर्याप्ति और योगो के कथन मे की गई है।

छठे श्लोक का अर्थ यह है कि—

जो कुछ गोमट्टसार के सूत्रो का आशय है उसी के अनुसार

धवला कार ने धवला टीका मे तथा गोमट्टसारकार तथा गोमट्ट-सार के टीका-कार ने भी सर्वत्र द्रव्य-वेद का भी निरूपण किया है। जो विद्वान यह कहते हैं कि 'टीकाकारो ने मूल ग्रन्थ मे जो द्रव्यवेदादि की बातें नहीं हैं वे स्वय अपनी समझ से लिख दी है अथवा उन्होंने भूल की है' ऐसी मिथ्या बातों का निरसन इस श्लोक से हो जाता है। क्योंकि टीकाकारो ने जो भी अपनी टीकाओं में सूत्र अथवा गाथा का विशद अर्थ किया है वह सूत्र एव गाथा के आशय के अनुसार ही किया है।

बस इन्हीं तालिकाओ के आधार पर षटखण्डागम, गोमट्ट-सार तथा उनकी टीकाओ को समझने की यदि जिज्ञासा और ग्रन्थ के अनुकूल समझने का प्रयत्न किया जायगा तो भाववेद और द्रव्यवेद दोनो का कथन इन शास्त्रो में प्रतीत होगा। हम आगे इस ट्रैक्ट में इन्हीं बातों का बहुत विस्तृत स्पष्टीकरण षट-खण्डागम के अनेक सूत्रो एव गोमट्टसार की अनेक गाथाओ तथा उन की टीकाओ द्वारा करते हैं।

षट् खण्डागम के धवला प्रथम-खण्ड में वर्णन क्रम क्या है?

षट खण्डागम के जीवस्थान-सत्प्ररूपणा नामक धवला के प्रथम खण्ड में किस बात का वर्णन है। और वह वर्णन प्रारभ से लेकर अत तक किस क्रम से ग्रन्थकार-आचार्य भूतवली पुष्प-दन्त ने किया है, सबसे पहले इसी बात पर लक्ष्य देना चाहिये

साथ ही विशेष लक्ष्य षट्खण्डागम के प्रारम्भ में बताये गये मूल-सूत्र जीव विशिष्ट-शरीरों की पात्रता के अनुसार गुणस्थान विचार, और आदि की चार मार्गणाओं द्वारा निर्दिष्ट कथन पर देना चाहिये। फिर सिद्धान्त शास्त्र का रहस्य समझ में सहज आ जायगा। इसी को हम यहां बताते हैं—

१४ मार्गणाओं और १४ गुणस्थानों में किस २ मार्गणा में कौन २ गुणस्थान संभव हो सकते हैं, बस यही बात षटखण्डागम की धवला टीका के प्रथम खण्ड में घटन की गई है। कर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम और योग के द्वारा उत्पन्न होने वाले जीवों के भावों का नाम गुणस्थान है तथा कर्मोदय-जनित जीव की अवस्था का नाम मार्गणा है। किन २ अवस्थाओं में कौन २ से भाव जीव के हो सकते हैं, बस इसी को मार्गणाओं में गुणस्थानों का सघटन कहते हैं। यही बात धवल सिद्धान्त के प्रथमखण्ड में बताई गई हैं।

यहां पर इतना विशेष समझ लेना चाहिये कि चौदह मार्गणाओं में आदि की ४ मार्गणाएँ जीव के शरीर से ही सम्बन्ध रखती हैं इसलिये गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओं में द्रव्य वेद के साथ ही गुणस्थान बताये गये हैं।

जैसे गति मार्गणा में चारों गतियों के जीवों का वर्णन है, उसमें नारकी तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चारों शरीर पर्यायों का समावेश है।

इन्द्रिय मार्गणा मे एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि इन्द्रिय सम्बन्धी शरीर रचना का कथन है।

काय मार्गणा मे औदारिक वैक्रियिक आदि शरीरो का कथन है, योग मार्गणा में औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काय योग, वैक्रियिक काय योग वैक्रियिक मिश्र काय योग आदि विवेचन द्वारा शरीर की पूर्णता और अपूर्णता के साथ योगो का कथन है। इन्हीं भिन्न २ द्रव्य शरीर के साथ गुणस्थान बताये गये हैं। परन्तु इस से आगे वेद मार्गणा में नो कषाय के उदय स्वरूप वेदो मे गुणस्थान बताये गये हैं, वहा पर द्रव्य शरीर के वर्णन का कोई कारण नही है। इसी प्रकार कषाय मार्गणा मे कषायोदय विशिष्ट जीव मे गुणस्थान बताये गये हैं, वहा पर भी द्रव्य शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है ज्ञान मार्गणा मे भी द्रव्य शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है वहा पर भिन्न २ ज्ञानो मे गुणस्थान बताये गये है, इस प्रकार वेद, कषाय, ज्ञान, आदि मार्गणाओ में गुणस्थानो का कथन भाव की अपेक्षा से हैं वहा पर द्रव्य शरीर का सम्बन्ध नहीं है। किन्तु आदि की चार मार्गणाओ का कथन मुख्य रूप से द्रव्य शरीर का ही विवेचक है अतः वहा तक भाववेद की कुछ भी प्रधानता नहीं है, केवल द्रव्य-वेद की ही प्रधानता है।

इसी बात का स्पष्टीकरण षट्खण्डागम की जीवस्थान सत्प्ररूपणा के प्रथम खण्ड धवल सिद्धात के अनुयोग द्वारो से

हम करते हैं—

धवल सिद्धात मे जिन मार्गणाओ मे गुणस्थानो को घटित किया गया है वह आठ अनुयोग द्वारो से किया गया है वे आठ अनुयोग द्वार ये हैं—

१-सत्प्ररूपणा २-द्रव्य प्रमाणानुगम ३-क्षेत्रानुगम ४-स्पर्शनानुगम ५-कालानुगम ६-अन्तरानुगम ७-भावानुगम ८-अल्प-बहुत्वानुगम।

इन आठो का वर्णन क्रम से ही किया गया है, उनमे सबसे पहिले सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार है उसका अर्थ धवलाकारने वस्तु के अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाली प्ररूपणा को सत्प्ररूपणा बताया है। जैसा कि—

'अस्थित पुण सत्त अत्थित्तस्सय तदेवपरिमाण।' इस गाथा द्वारा स्पष्ट किया है। जैसाकि—सत्सत्वमित्यर्थः कथमन्तर्भावित-भावत्वात। इस विवेचन द्वारा धवलाकार ने स्पष्ट किया है इसका अर्थ यह है कि सत्प्ररूपणा मे सत् का अर्थ वस्तु की सत्ता है। क्योंकि वस्तु की सत्ता में भाव अन्तर्भूत रहता है। इससे स्पष्ट है कि—सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वार जीवो के द्रव्य शरीर का प्रतिपादन करता है, द्रव्य के विना भाव का समावेश नहीं हो सकता है। जिस वस्तु के मूल अस्तित्व का बोध हो जाता है उस वस्तु की सख्या का परिमाण द्रव्य प्रमाणानुगम द्वारा बताया गया है ये दोनो अनुयोग द्वार मूल द्रव्य के अस्तित्व और उसकी सख्या

को बताते हैं। आगे के अनुयोग द्वार उस वस्तु के क्षेत्र, स्पर्श, काल आदि का बोध कराते हैं। धवल सिद्धात के क्रमवर्ती विवेचन को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धवल सिद्धात मे पहले द्रव्यवेद विशिष्ट शरीरो का निरूपण किया गया है और उन्हीं द्रव्य शरीर विशिष्ट जीवो की गणना बताई गई है। बिना मूल भूत द्रव्यवेद के निरूपण किये, भाववेद का निरूपण नहीं हो सकता है। और उसी प्रकार का निरूपण धवल शास्त्र मे किया गया है।

इस प्रकरण मे धवल सिद्धात में पहले चौदह गुणस्थानो के निरूपक सूत्र हैं, उनके पीछे १४ मार्गणाओ का कथन सूत्रो द्वारा किया गया है, इस कथन मे द्रव्यवेद के सिवा भाववेद का कुछ भी वर्णन नहीं है। आगे उन १४ मार्गणाओ मे गुणस्थान घटित किये गये हैं, वे गुणस्थान उन मार्गणाओ मे उसी रूप से घटित किये गये हैं जहा जो द्रव्य शरीर में हो सकते हैं। और आगे की वेद मार्गणा, कषाय मार्गणा, ज्ञानमार्गणा आदि मार्गणाओ में केवल आत्मीय भावो का (वैभाविक और स्वाभाविक) ही सम्बन्ध होने से चौदह गुणस्थानो का समावेश किया गया है। आचार्य भूतबली पुष्पदन्त ने सत्प्ररूपणा रूप अनुयोग द्वार को ही ओघ और आदेश अर्थात मार्गणा और गुणस्थान इन दो कोटियों मे विभक्त कर दिया है। और समूचे ग्रन्थ मे मार्गणाओ को आधार बनाकर गुणस्थानो को यथा सम्भव रूप से

सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असजद सम्माइट्ठी सजदासजदात्ति (सूत्र २६ पृ० १०४ धवल सिद्धान्त) अर्थ सुगम है। इस सूत्र की धवला को पढ़िये—

कथ पुनरसंयत—सम्यग्दृष्टीनामसत्वमिति न तत्राऽसंयत-सम्यग्दृष्टीना मुत्पत्तेरभावात तत्कुतोऽवगम्यत इतिचेत छसुहेट्ठिमासु पुढवीसु जोइसिवण भवण सव्व इत्थीसु गोदेसु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठीदु जो जीवो। इत्यार्षात। (पृ० १०४ धवला)

इस धवला टीका का स्पष्ट अर्थ यह है कि— तिर्यञ्चनियो के अपर्याप्त काल मे असयत सम्यग्दृष्टि जीवो का अभाव कैसे माना जा सकता है ? इस शंका के उत्तर मे कहा जाता है कि नहीं, यह शका ठीक नहीं क्योकि तिर्यंचनियों मे असयत सम्यग्दृष्टियो की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये उनके अपर्याप्तकाल मे चौथा गुणस्थान नहीं पाया जाता है। यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—जो सम्यग्दृष्टिजीव होता है वह प्रथम पृथिवीको छोड़ कर नीचे की छह पृथिवियों में, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवन-वासी देवोमे और सब प्रकार की स्त्रियोंमे उत्पन्न नहीं होता है। इस आर्षवचन से जाना जाता है। यहां पर उत्पत्ति का कथन है। और देविया मानुषी तथा तिर्यंचिनी तीनो (सब) प्रकार की स्त्रियों का स्पष्ट कथन है यह द्रव्य स्त्री वेद का स्पष्ट कथन है। यह अर्थ वाक्य है।

इसके आगे इन्द्रियानुवाद की अपेक्षा वर्णन है वह इस

प्रकार है—

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदीया चउरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ।

(सूत्र ३३ पृष्ठ ११६ धवला)

इसका अर्थ सुगम है। यहां पर हम इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि उसी सूत्र का हम विशेष खुलासा करेंगे जो सुगम नहीं होगा। और उन्हीं सूत्रों को प्रमाण में देंगे जिससे प्रकृत विषय द्रव्य शरीर सिद्धि की उपयुक्तता और स्पष्टता विशेष रूप से होगी, यद्यपि सभी सूत्र योग मार्गणा तक द्रव्य शरीर के ही प्रतिपादक हैं परन्तु सभी सूत्रों को प्रमाण में रखने से यह लेख बहुत अधिक बढ़ जायगा। इसी भय से हम सभी सूत्रों का प्रमाण नहीं देंगे। हां जिन्हें कुछ भी संदेह होवे पटखण्डागम को निकालकर देख लेवें। अस्तु।

ऊपर के सूत्र में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों का कथन सर्वथा द्रव्य शरीर का ही निरूपक है। भाववेद की विवक्षा तक नहीं है। इसका खुलासा देखिये—

एइंदिया दुविहा बादरा सुहमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता।

(सूत्र ३४ पृष्ठ १२५ धवला)

अर्थ सुगम है। ये एकेन्द्रिय जीवों के बादर सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त केवल द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर की अपेक्षा से

ही किये गये हैं। यहा पर भाववेद का कोई उल्लेख नहीं है। धवला टीका मे इस बात का पूर्ण खुलासा है। परन्तु सूत्र ही स्पष्ट कहता है, तब धवला का उद्धरण देना अनुपयोगी और ग्रन्थ को बढ़ाने का साधक होगा। अतः छोड़ा जाता है।

इसके आगे—

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता, तीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। चतुरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पंचिंदिया दुविहा सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि।

(सूत्र ३५ पृष्ठ १२६ धवला)

अर्थ सुगम है—

ये सभी भेद द्रव्य शरीर के ही हैं। भाव पक्षी सभी विद्वान इस षटखण्डागम सिद्धात शास्त्र को समूचा भाववेद का ही कथन करने वाला बताते हैं और विद्वत्समाज को भी भ्रम में डालने का प्रयास करते हैं वे अब नेत्र खोलकर इन सूत्रों को ध्यान से पढ़ लेवें। इन सूत्रो में भाववेद की गन्ध भी नहीं है। केवल द्रव्य शरीर के ही प्रतिपादक हैं।

इसके आगे उन्हीं एकेन्द्रियादि जीवोमे गुणस्थान बताये हैं। जो सुगम और निर्विवाद हैं। यहां उनका उल्लेख करना व्यर्थ है।

इसके आगे कायमार्गणाको भी ध्यानसे पढ़ें कायाणुवादेण

अत्थि पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वण-
प्फइकाइया तसकाइया अकाइया चेदि ।

(सूत्र ३६ पृष्ठ १३२ धवला)

अर्थ सुगम और स्पष्ट है—

ये सभी भेद द्रव्य शरीर के ही है। भाववेद का नाम भी यहा नहीं है।

इसके आगे—

पुढविकाइया दुविहा वादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता आदि।

(सूत्र ४०–४१ पृष्ठ १३४–१३५)

अर्थ सुगम है—

यह लम्बा सूत्र है और पृथिवीकाय आदि से लेकर वनस्पति-काय पर्यंत साधारण शरीर, प्रत्येक शरीर, सूक्ष्म बादर पर्याप्त, अपर्याप्त आदि भेदों का विवेचन करता है। दूसरा ४१वा सूत्र भी इन्हीं भेदो का विवेचक है। यह विवेचन भी सब द्रव्यवेद का ही है।

आगे इन्हीं पृथिवी काय और त्रस कार्यों मे गुणस्थान बताये गये है जो सुगम और स्पष्ट एव निर्विवाद है। जिन्हे देखना हो वे ४३वे सूत्र से ४५वें सूत्र तक धवल सिद्धात को देखें।

६३वें सूत्रका मुख्य विषय योगमार्गणा है। संयतपद सूत्र में सर्वथा असभव है।

अब क्रम से वर्णन करते हुए योग मार्गणा का विवेचन करते हैं, इसी योग मार्गणा के भीतर ६३वा सूत्र है। और वह द्रव्यस्त्री के स्वरूप का ही निरूपक है। क्रमवद्ध प्रकरण को पक्ष-मोह शून्य सद्बुद्धि और ध्यान से पढ़ने से यह बात साधारण जानकार भी समझ लेंगे कि यह कथन द्रव्य शरीर का ही निरूपक है। क्रम पूर्वक विवेचन करने स ही समझमे आसकेगा इसलिये कुछ सूत्र क्रम से हम यहा रखते हैं पंछे ६३वा सूत्र कहेंगे।

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी, वचि जोगी, काय जो गी चेदि। (सूत्र ४७ पृष्ठ १३६ धवल)

अर्थ सुगम है—

धवलाकार ने द्रव्य मन और भाव मन के विवेचन से यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सब कथन द्रव्य शरीर का है।

इसके आगे मनोयोग के सत्य असत्य आदि चार भेदो का और उनमे सम्भावित गुणस्थानों का विवेचन किया गया है। उसी प्रकार आगे के सूत्रों मे वचन योग के भेदों और गुणस्थानो का वर्णन है। ५६वें सूत्र मे शंख के समान धवल और हस्त प्रमाण आहारक शरीर वर्णन है। यह द्रव्य शरीर का विधायी स्पष्ट कथन है।

उसके आगे षटखण्डागम धवलसिद्धांत के सूत्र ५६ से लेकर सूत्र १०० तक काययोग और मिश्र काययोगों के भेद और उनमे सम्भव गुणस्थानो का वर्णन है। जो कि पुद्गल विपाकी नामा नामकर्म के उदय से मन वचन काय वर्गणाओ मे से किसी एक वर्गणा के अवलम्बन से कर्म नोकर्म खींचने के लिये जो आत्म-प्रदेशो का हलन चलन होता है वही योग है जैसा कि धवला मे कहा है। वह हलन चलन भाववेद मे अशक्य है। काययोग और मिश्र काययोग के सम्बन्ध से इन्हीं सूत्रो मे छह पर्याप्तियों का भी वर्णन है जो द्रव्यवेद मे ही घटित है। भाववेद मे उनका घटित होना शक्य नहीं है। इससे स्पष्ट रूप से सभी समझ लेंगे कि ६३वा सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानों का विधायक है। वह भाववेद का सर्वथा विधायक नहीं है। अतः उस सूत्रमे सञ्जद पद सर्वथा नहीं है यह निःसशय एव निश्चित सिद्धांत है। इसी मूल बात का निर्णय योग मार्गणा के सूत्रो का प्रमाण देकर और पर्याप्तियो के प्ररूपक सूत्रो का प्रमाण देकर हम स्पष्टता से कर देते हैं—

कम्मइय कायजोगो विग्गहगइ समावण्णाण केवलीण वा समुग्घादगदाण। (सूत्र ६० पृष्ठ १४६ धवल सिद्धांत)

अर्थात्—कार्माण काययोग विग्रह गति मे रहने वाले चारों गतियो के जीवो के होता है और केवली भगवान के समुद्घात अवस्था में होता है। इस विग्रह गति के कथन से स्पष्ट सिद्ध है

कि यह वर्णन द्रव्य शरीर का ही है।

आगे इन्हीं मार्गणाओमे गुणस्थान घटित किये गयेहैं। यहा विशेप ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसी काययोगके निरूपण मे आचार्य भूतवली पुष्पदन्त ने पर्याप्तियो का सम्बन्ध बताया है जैसा कि सूत्र है—

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि, अपज्जत्ताण वि अत्थि।

(सूत्र ६६ पृष्ठ १४५ धवल)

अर्थ सुगम है—

इसी सूत्र की धवला टीका में आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि—

पर्याप्तस्यैव एते योगाः भवन्ति, एते चोभयोरिति वचन-माकर्ण्य पर्याप्ति-विषयजात-संशयस्य शिष्यस्य सन्देहापोहनार्थ-मुत्तरसूत्रमाह—'छ पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ।'

(सूत्र ७० पृष्ठ १४६ धवल सिद्धात)

यहा पर आचार्य वीरसेन ने पर्याप्तियो का विधायक सूत्र देखकर यह भूमिका प्रगट की है कि ये योग पर्याप्त जीव के ही होते हैं और ये योग पर्याप्त अपर्याप्त जीवो के होते हैं। इस सूत्र निर्दिष्ट वचन को सुनकर शिष्य को पर्याप्तियों के विषय में सशय खडा हो गया, उसी संशय के दूर करने के लिये आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त ने पर्याप्तियों के विधायक सूत्र कहे हैं— सूत्र मे छह पर्याप्तिया और छह अपर्याप्तिया बताई गई है। पर्याप्ति के

लक्षण को स्पष्ट करते हुए धवलाकार कहते हैं कि—

आहार-शरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिश्वास-भाषामनसां निर्वृत्ति पर्याप्तिः ताश्च षट् भवन्ति ।

अर्थात् आहार, शरीर, इन्द्रिय उच्छ्वासनिश्वास, भाषा और मन इन छहकी उत्पत्ति होना ही पर्याप्ति है ये यथा क्रमसे छह होती हैं। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि यह पर्याप्तियों का वर्णन और उनमें गुणस्थानों का समन्वय द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। भाववेद में इन पर्याप्तियों की उत्पत्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। हां पूर्ण शरीर और अपूर्ण शरीर के सम्बन्ध से भाववेद भी आधार आधेय रूप से घटित किया जाता है परन्तु इन पर्याप्तियों का मूल द्रव्य शरीर की उत्पत्ति और प्राप्ति है। अतः इन पर्याप्तियों के सम्बन्ध से जो आगे के सूत्रों में कथन है वह सब द्रव्य शरीर का ही है इसका भी स्पष्टीकरण नीचे के सूत्रों से होता है—

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजद सम्माइट्ठि त्ति। सूत्र ७१
पंच पज्जत्तीओ पंच अपज्जत्तीओ सूत्र ७२।
बीइन्दियप्पहुडि जाव असण्णि पंचिंदिया त्ति। सूत्र ७३
चत्तारि पज्जत्तीओ चत्तारि अपज्जत्तीओ। सूत्र ७४
एइंदियाणं सूत्र ७५। (पृष्ठ १५६-१५७ धवल)

अर्थ—यह सभी-छहों पर्याप्तियां संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक होती हैं। तथा द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय

जीवो पर्यंत मन को छोडकर शेष पांच पर्याप्तियां होती हैं। तथा भाषा और मन इन दो पर्याप्तियो को छोडकर बाकी चार पर्याप्तिया एकेन्द्रिय जीवो के होती हैं। इन सबों के जैसे नियत पर्याप्तिया होती हैं वैसे ही अपर्याप्तियां भी होती है।

इन छह पर्याप्तियों की समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही आ० भूतबलि पुष्पदन्त ने बताई है। इसका खुलासा धवलाकार ने अनेक शङ्कायें उठाकर यह कर दिया है कि चौथे गुणस्थान से ऊपर पर्याप्तिया इसलिये नहीं मानी गई हैं कि उनकी समाप्ति चौथे तक ही हो जाती है अर्थात् चौथे गुणस्थान तक ही जन्म मरण होता है इसी बात की पुष्टि में यह बात भी कही गई है कि सम्यक् मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थान मे भी ये पर्याप्तिया नहीं होती हैं क्योंकि उस गुणस्थान में अपर्याप्तकाल नहीं है अर्थात् तीसरे मिश्र गुणस्थान मे जीवो का मरण नहीं होता है। इस कथन से यह स्पष्ट है कि यह पर्याप्तियो का विधान और विवेचन द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है।

यदि द्रव्य शरीर और जन्म मरण से सम्बन्ध इन पर्याप्तियों का नहीं माना जावे तो चौथे गुणस्थान तक ही सूत्रकार ७१वें सूत्र द्वारा इनकी समाप्ति नहीं बताते किन्तु १३वें गुणस्थानतक बताते। इसी प्रकार असञ्ज्ञीजीव तक मनको छोड़कर पांच और एकेन्द्रिय जीव में भाषा और मन दोनो का अभाव बताकर केवल चार पर्याप्तियो का विधान सूत्रकार ने किया है इससे भी स्पष्ट है कि

यह विवेचन द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। क्योंकि असञ्ज्ञी जीव के मन और एकेन्द्रिय जीव के भाषा की उत्पत्ति नहीं होती है।

इस प्रकार सूत्रकार ने योगो के बीच मे सम्बन्ध—प्राप्त पर्याप्तियो का स्वरूप और उनका एकेन्द्रियादि जीवो के भिन्न २ द्रव्य शरीरो के साथ सम्बन्ध एव गुणस्थानो का निरूपण करके उन्हीं औदारिकादि काययोगो को पर्याप्तियो और अपर्याप्तियो से घटाया है वह इस प्रकार है—

ओरालिय कायजोगो पज्जत्ताण ओरालिय मिस्स कायजोगो अपज्जत्ताण। सूत्र ७६

वेउव्विय कायजोगो पज्जत्ताण वेउव्विय मिस्स काय जोगो अपज्जत्ताण। सूत्र ७७

आहार कायजोगो पज्जत्ताण आहार मिस्स काय जोगो अपज्जत्ताण। सूत्र ७८

(पृष्ठ १५८-१५६ धवल)

अर्थ सुगम और स्पष्ट है।

इन सूत्रो की व्याख्या मे धवलाकार ने यह बात स्पष्ट करदी है कि जब तक शरीर पर्याप्ति निष्पन्न नहीं हो पाती तब तक जीव अपर्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्तक) कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह सब कथन द्रव्य शरीर की रचना और उसकी पूर्णता से सम्बन्ध रखता है।

इसी प्रकार वैक्रियिक मिश्र में अपर्याप्त अवस्था बताकर अपर्याप्त अवस्था मे कार्माण काययोग भी बताया गया है। यह बात भी शरीरोत्पत्ति से ही सम्बन्ध रखती है।

आहार शरीर के सम्बन्ध में तो धवलाकार ने और भी स्पष्ट किया है कि—

आहारशरीरोत्थापकः पर्याप्तः संयतत्वान्यथानुपपत्तेः।

(धवला पृष्ठ १५६)

अर्थात् आहार शरीर को उत्पन्न करने वाला साधु पर्याप्तक ही होता है। अन्यथा उसके संयतपना नहीं बन सकता है इसका तात्पर्य यही है कि औदारिक शरीर की रचना तो उसके पूर्ण हो चुकी है, नहीं तो उसके संयम कैसे बनेगा। केवल आहारक शरीर की रचना अपूर्ण होने से उसे अपर्याप्त कहा गया है। इस से औदारिक द्रव्य शरीर को ही आधार मानकर आहारक शरीर की अपर्याप्ति का विधान सूत्रकार ने किया है। यह बात खुलासा हो जाती है। इसी सम्बन्ध में धवलाकार ने यह भी कहा है कि-

भवत्वसौ पर्याप्तकः औदारिकशरीरगतषटपर्याप्त्यपेक्षया, आहारशरीरगतपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावापेक्षया त्वपर्याप्तकोऽसौ।

(पृष्ठ १५१)

अर्थात्— औदारिक शरीरगत षटपर्याप्तियों की पूर्णता की अपेक्षा तो वह छठे गुणस्थानवर्ती साधु पर्याप्तक ही है, किन्तु आहार शरीर गत पर्याप्तियों की पूर्णता नहीं होनेसे वह अपर्याप्त

कहलाता है।

यहा पर धवलाकार ने—"औदारिक शरीरगत षटपर्याप्ति और आहार शरीर गत पर्याप्ति" इन पदो को रखकर बहुत स्पष्ट कर दिया है कि यह योग और पर्याप्ति सम्बन्धी सब कथन द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद से ही सम्बन्ध रखता है। भाववेद से इस का कोई सम्बन्ध नहीं है। और यहा पर भाववेद की अपेक्षा कोई विचार भी नहीं किया गया है।

इसके आगे इन्हीं योग और पर्याप्तियों के समन्वय को घटित करके जगदुद्धारक अगैकदेश ज्ञाता आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त भगवान पर्याप्तियों के साथ गति आदि मार्गणाओं मे गुणस्थानों का समन्वय दिखाते हैं।

णेरइया मिच्छाइट्ठि असंजद सम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तगा सिया अपज्जत्तगा। (सूत्र ७९ पृष्ठ १६० धवल)

अर्थ सुगम है—

इस सूत्र द्वारा नारकियों की अपर्याप्त अवस्था मे मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि—पहला और चौथा ऐसे दो गुणस्थान बताये हैं। पहला तो ठीक ही है परन्तु चौथा गुणस्थान अपर्याप्त अवस्था मे प्रथम नरक की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरण कर सम्यग्दर्शन के साथ पहले नरक को जा सकता है यह बात सभी जैन विद्वत्समाज जानता होगा अतः इस के लिये अधिक प्रमाण देना व्यर्थ है और सबसे बड़ा यही

सूत्र प्रमाण है। यहां पर भी विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि नारकियों की प्रथम नरक की सम्यक्त्व सहित उत्पत्ति को लक्ष्य करके ही यह ७६वां सूत्र कहा गया है अतः वह द्रव्य प्रतिपादक है। जैसा कि—समस्त पीछे के सूत्रो द्वारा एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति निरूपण के प्रकरण द्वारा हमने स्पष्ट किया है। इसी का और भी स्पष्टीकरण इससे आगे के सूत्र में देखिये।

सासणसम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ८० पृष्ठ १६० धवल सिद्धांत)

अर्थ—नारकियो मे दूसरा और तीसरा (सासादन और मिश्र) गुणस्थान नियम से पर्याप्त अवस्था मे ही होता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए धवलाकार स्पष्ट रूप से कहते हैं कि—

नारकाः निष्पन्नषट्पर्याप्तयः संतः ताभ्यां गुणाभ्यां परिणमन्ते नापर्याप्तावस्थायाम्। किमिति तत्र तौ नोत्पद्येते इति चेत्तयो स्तत्रोत्पत्तिनिमित्तपरिणामाभावात् सोपि किमिति तयोर्नस्यादितिचेन्। स्वाभाव्यात्। नारकाणामग्नि सम्बन्धाद्भस्मसाद्भाव-मुपगतानां पुनर्भस्मनि समुत्पद्यमानानां अपर्याप्ताद्धायां गुणद्वयस्य सत्वाविरोधान्नियमेन पर्याप्ता इति न घटते इति चेन्न, तेषां मरणाभावात् भावे वा न ते तत्रोत्पद्यन्ते "णिरयादो णेरयिया उवट्टिद समाणा णो णिरयगदिं जादि णो देवगदिं जादि तिरिक्ख गदिं मणुस्सगदिं च जादि" इत्यनेनार्षेण निषिद्धत्वात्। आयुषोऽवसाने म्रियमाणानामेष नियमश्चेन्न तेषामपमृत्योरसत्वात्। भस्मसाद्भाव-

पर्याप्त ही होते हैं सो कैसे घटेगी ? पर्याप्त अवस्था का नियम कैसे बनेगा ?

उत्तर—यह शका ठीक नहीं है क्योंकि छेदन भेदन होने एवं अग्नि आदि मे जला देने आदि से भी नारकियो का मरण नहीं होता है। यदि उनका मरण हो जाय तो वे फिर वहां (नरक मे) उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। कारण; ऐसा आगम है कि जिनकी आयु पूर्ण हो जाती है ऐसे नारकी नरक गति मे निकल कर फिर नरक गति मे पैदा नहीं होते हैं। इसी प्रकार वे मरकर देवगति को भी नहीं जाते हैं किन्तु नरक से निकलकर वे तिर्यंच और मनुष्यगति मे ही उत्पन्न होते हैं इस आर्ष कथन से नारकी जीवो का नरक से निकलकर पुनः सीधा नरक मे उत्पन्न होना निषिद्ध है।

फिर शका—आयु के अन्त मे ही मरने वाले नारकियो के लिये ही सूत्र मे कहा गया नियम लागू होना चाहिये।

उत्तर—नहीं, क्योंकि नारकी जीवो की अपमृत्यु (अकाल-मरण) नहीं होती है। नारकियो का छेदन भेदन अग्निमें जलाने आदि से बीच मे मरण नहीं होता है किन्तु आयु के समाप्त होने पर ही उनका मरण होता है।

फिर शका—नारकियोका शरीर अग्निमें सर्वथा जला दिया जाता है वैसी अवस्थामे उनका मरण फिर कैसे कहा जाता है ?

उत्तर—वह मरण नहीं है किन्तु उनके शरीर का केवल

विकार मात्र है। वह आयु की व्युच्छित्ति (नाश) होने मे निमित्त नहीं है। यदि बीच २ के शरीर विकार को ही मरण मान लिया जाय तो फिर जिसने बाल्यावस्था को पूरा करके यौवन अवस्था को प्राप्त कर लिया है उसका भी मरण कहा जाना चाहिए? अर्थात मरण तो आयु की समाप्ति मे ही होता है।

इस समस्त कथन से यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि दूसरे तीसरे गुणस्थान जो नारकियो की पर्याप्त अवस्था में ही सूत्रकार भगवत भूतबलि पुष्पदन्त ने सूत्र ८० मे बताये हैं वे नारकियो के द्रव्य शरीर की ही मुख्यता से बताये हैं। इस सूत्र के अन्तस्तत्व को धवलाकार ने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि नारकियो का शरीर बीच २ मे अग्नि से जला दिया भी जाता है तो भी वह मरण नहीं है और न वह उनकी अपर्याप्त अवस्था है। क्योकि उस शरीर के जल जाने पर भी नारकियो की आयु समाप्त न होनेसे उनका मरण नही होता है। इसलिये वे पर्याप्त ही रहते हैं। इस प्रकार यह पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था का समन्वय नारकियोके द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। और उसी पर्याप्त द्रव्य शरीर की मुख्यता से नारकियो के उक्त दो गुणस्थानो का सद्भाव सूत्रकार ने बताया है।

यदि यहा पर भाववेद की मुख्यता अथवा उसका विवेचन होता तो उस वेद की मुख्यता से ही सूत्रकार विवेचन करते, परन्तु उन्हो ने भावो की प्रधानता से यहा विवेचन सर्वथा नहीं

किया है किन्तु नारकियो के द्रव्य शरीर मे और उनकी पर्याप्त अवस्था मे सम्भव होने वाले गुणस्थानो का उल्लेख किया है। इसी प्रकरण मे पर्याप्तियो के साथ गति मार्गणा मे ६३ वा सूत्र है। अतः जैसे यहा पर नारकियो के द्रव्यशरीर (द्रव्यवेद) की मुख्यता से सम्भव गुणस्थानो का प्रतिपादन सूत्रकार ने किया है ठीक इसी प्रकार आगे के ८१ से लेकर ६२वें आदि सूत्र मे भी किया है। वहा भी पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था मे सम्बन्धित द्रव्य-वेद की मुख्यता से सम्भव गुणस्थानो का वर्णन है।

विद्वानोको क्रमपद्धति, प्रकरण और सबध समन्वय का विचार करके ही ग्रन्थ का रहस्य समझना चाहिये। "समस्त षटखण्डागम भाववेद का ही निरूपक है, द्रव्यवेद का इसमे कहीं भी वर्णन नहीं है वह ग्रन्थांतरो से समझना चाहिये" ऐसा एक ओर से सभी भावपक्षी विद्वान् अपने लम्बे २ लेखो मे लिख रहे हैं सो वे क्या समझकर ऐसा लिखते हैं? हमे तो उनके वैसे लेख और ग्रन्थाशय के समझने पर आश्चर्य होता है। ऊपर जो कुछ भी विवेचन हमने सूत्रों और व्याख्या के आधार से किया है उसपर उन विद्वानो को दृष्टि देना चाहिये और ग्रन्थानुरूप ही समझने के लिये बुद्धि को उपयुक्त बनाना चाहिये। पक्ष मोह मे पड़कर भगवान भूतबलि पुष्पदन्त ने इन धवलादि सिद्धांत शास्त्रों में किसी बात को छोड़ा नहीं है। उन्होने द्रव्य शरीर की पात्रता के आधार पर ही सम्भव गुणस्थान का समन्वय किया है। इसलिये

यह कहना कि द्रव्यवेद का कथन इस षट्खण्डागम में नहीं है इसे अन्यातर से समझना चाहिये सिद्धांत शास्त्र को अधूरा बताने के साथ वस्तु तत्व का अपलाप करना भी है। क्योंकि द्रव्यवेद का वर्णन ही सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार में किया गया है जिसका कि दिग्दर्शन हमने अनेक सूत्रों के प्रमाणों से यह कराया है। इस समग्र कथन का भाव-पक्षी विद्वानों के निरूपण से लोप ही हो जाता है अथवा विपरीत कथन सिद्ध होता है। मनसा वचसा कायेन परम वंदनीय इन सिद्धांत शास्त्रों के आशयानुसार ही उन्हें वस्तु तत्व का विचार करना चाहिये ऐसा प्रसंगापात्त उनसे हमारा निवेदन है।

आगे भी सिद्धांत शास्त्र सरणि के अनुसार पर्याप्तियों में गुणस्थानों के साथ चारों गतियों में द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर का ही सम्बन्ध है। यह बात आगे के १०० सूत्रों तक जहां तक कि पर्याप्तियों के साथ गति-निष्ठ गुणस्थानों का विवेचन है बराबर इसी रूप में है। १००वें सूत्र के बाद वेद मार्गणा का प्रारम्भ १०१ सूत्र से होता है। इस वेद मार्गणा से लेकर आगे की कषायादि मार्गणाओं में द्रव्य शरीर की मुख्यता नहीं रहती है। अतः इन सबों में भाववेद का विवेचन है। इस भाववेद के प्रकरण में मानुषियों के नौ और चौदह गुणस्थान का समावेश किया गया है, इस सिद्धांत सरणि को समझकर ही विद्वानों को प्रकृत विषय (संयत पद के विवाद) को सरल बुद्धि से हटा देने में

ही सिद्धान्त शास्त्रों का वास्तविक विनय, वस्तु स्वरूप एवं समाज हित समझना चाहिये। अस्तु—

अब आगे के सूत्रों पर दृष्टि डालिये—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीये णेरइया मिच्छाइट्ठिणो सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।

(सूत्र ८२ पृष्ठ १८२ धवला)

अर्थ—दूसरे नरक से लेकर सातवें नरक तक नारकी मिथ्यादृष्टि पहले गुणस्थान को अपर्याप्त अवस्था में भी धारण करते ह। पर्याप्त में भी करते हैं।

इस सूत्र की व्याख्या में धवलाकार कहते हैं—

अधस्तनीषु षटसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टीनामुत्पत्तेः सत्वात्।

(पृष्ठ १८२ धवला)

अर्थात्—पहली पथ्वी को छोड़कर बाकी नीचे की छहो पृथिवियों मे मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं अतः वहां पर—दूसरे से सातवें नरक तक के नारकियो की पर्याप्त अपर्याप्त दोनो अवस्थाओंमें पहला गुणस्थान होता है। यहां पर भी द्रव्य-वेद (नारक शरीर) के आधार पर ही गुणस्थान का ही निरूपण किया गया है।

आगे के सूत्र मे और भी स्पष्ट किया गया है। देखिये—

सासण सम्माइट्ठि सम्मामिच्छ इट्ठि असंजदसम्माइट्ठिणो णियमा पज्जत्ता। (सूत्र ८३ पृष्ठ १८२ धवल सिद्धांत)

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठीसासणसम्माइट्ठिअसंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।

(सूत्र ८८ पृष्ठ ३३३ धवल)

अर्थ सुगम है—

परन्तु यहां पर तिर्यंचों के जो अपर्याप्त अवस्था में भी चौथा गुणस्थान सूत्र में बताया गया है वह तिर्यंचों के द्रव्य शरीर के आधार पर ही बताया गया है इस सूत्र का स्पष्टीकरण धवलाकार ने इस प्रकार किया है—

भवतु नाम मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु पर्याप्तापर्याप्तद्वयोः सत्त्वं तयोस्तत्रोत्पत्त्यविरोधात् सम्यग्दृष्टयस्तु पुनर्नो-

त्पद्यन्ते तिर्यगपर्याप्तपर्यायेण सम्यग्दर्शनस्य विरोधादिति ? न विरोध:, अस्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सेवित-तीर्थंकरः क्षपितसप्तप्रकृतिः कथं तिर्यक्षु दुःखभूयस्सूत्पद्यते इति-चेन्न तिरश्चा नारकेभ्यो दुःखाधिक्याभावात्। नारकेष्वपि सम्यग्दृष्टयो नोत्पत्स्यन्ते इति चेन्न तेषा तत्रोत्पत्तिप्रतिपादकार्षोप-लम्भात्। पृष्ठ १६३ धवला)

अर्थ—मिथ्यादृष्टि और सासादन, इन दो गुणस्थानों की सत्ता भले ही तिर्यंचो की पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था मे बनी रहे क्योंकि तिर्यंचो की पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था मे इन दो गुण-स्थानों के होने मे कोई बाधा नहीं आती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव तो तिर्यंचो मे उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि तिर्यंचो की अपर्याप्त अवस्था के साथ सम्यग्दर्शन का विरोध है ? इस शङ्का के उत्तर में धवलाकार कहते हैं कि तिर्यंचो की अपर्याप्त अवस्था के साथ भी सम्यग्दर्शन का विरोध नहीं है, यदि विरोध होता तो ऊपर जो ८४वा सूत्र है इस आर्षको अप्रमाणता ठहरेगी, क्योंकि तिर्यंचो की अपर्याप्त अवस्था मे भी इस सूत्र मे चौथा गुणस्थान बताया गया है।

शङ्का—जिसने तीर्थंकर की सेवा की है और जिसने सात प्रकृतियों का क्षय किया है (प्रतिष्ठापन) ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि-जीव अधिक दु:ख भोगने वाले तिर्यंचो में कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर— ऐसा नहीं है, क्योंकि तिर्यंचों में नारकियों से अधिक दुःख नहीं है।

फिर शंका—जब नारकियों में अधिक दुःख है तो उन नारकियों में भी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं हो सकेंगे ?

उत्तर—यह भी शंका ठीक नहीं है क्योंकि नारकियों में भी सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला आर्ष सूत्र प्रमाण से पाया जाता है आदि।

इस उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या से श्री धवलाकार ने यह बहुत खुलासा कर दिया है कि तिर्यंचों के अपर्याप्त शरीर में सम्यक्दर्शन क्यों हो सकता है ? इसका समाधान भी आगे की व्याख्या द्वारा यह कर दिया है कि जिस जीव ने सम्यग्दर्शन के ग्रहण करने के पहले मिथ्यादृष्टि अवस्था में तिर्यंच आयु और नरक आयु का बन्ध कर लिया है उस जीव की तिर्यंच शरीर में भी उत्पत्ति होने में कोई बाधा नहीं है लेख बढ़ जाने के भय से हम बहुत सा वर्णन छोड़ते जाते हैं। इसी लिये आगे की व्याख्या हमने नहीं लिखी है। जो चाहें वे उक्त पृष्ठ पर धवला से देख सकते हैं।

हम इस सब निरूपण से यह बताना चाहते हैं कि गुणस्थानों की सम्भावना एवं सत्ता जीवों के द्रव्य शरीर से ही सम्बन्धित है। और द्रव्य शरीर वही लिया जायगा जिसका कि सूत्र में उल्लेख है तिर्यंच शरीर में अपर्याप्त अवस्था में

सम्यग्दर्शन के साथ जीव किस प्रकार उत्पन्न होता है ? इस बात का इतना लम्बा विचार और हेतुवाद केवल तिर्यंच के द्रव्यशरीर की पात्रता पर ही किया गया है। यहा पर चौथे गुणस्थान के सम्भावित शरीर के कथन की मुख्यता बताई गई है, इस बात की सिद्धि सूत्र में पड़े हुये अपर्याप्त पद से की गई है। अतः इस समस्त प्रकरण मे पर्याप्त अपर्याप्त पद भाववेद का विधान नहीं करते हैं किन्तु द्रव्य शरीर का ही करते हैं यह निर्विवाद निर्णय सूत्रकार का है। भाव—पाठकों को निष्पक्षदृष्टि से सूत्राशय की व्याख्या के आधार पर समझ लेना चाहिये।

और भी खुलासा देखिये—

सम्मामिच्छाइट्ठि संजदासजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ८५ पृष्ठ १६३ धवल सिद्धात)

अर्थ सुगम है।

इस सूत्र की व्याख्या करते हुये धवलाकार ने यह बात सप्रमाण स्पष्ट कर दी है कि सूत्र मे जो तिर्यंचो के पांचवां गुण-स्थान बताया गया है वह पर्याप्त अवस्था में ही क्यो बताया गया है, अपर्याप्त अवस्था मे क्यों नहीं बताया गया ? व्याख्या इस प्रकार है—

मनुष्याः मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बद्धतिर्यगायुषः पश्चात् सम्यग्द-र्शनेन सहात्ताप्रत्याख्यानाः क्षपितसप्तप्रकृतयस्तिर्यक्षु किन्नोत्प-द्यन्ते? इति चेत् किंचातोऽप्रत्याख्यानगुणस्य तिर्यगपर्याप्तेषु सत्वा-

कि पर्याप्त अपर्याप्त पदों का सम्बन्ध केवल द्रव्यशरीर से ही है। और उन्हीं पर्याप्त अपर्याप्त द्रव्य शरीर (द्रव्यवेद) के साथ गुणस्थानों को घटित किया गया है। यहां तक बताया गया है कि जिस जीव के देवायु का बन्ध नहीं हुवा है या उस पर्याय में नहीं होगा अथवा शेष तीन आयुओं में से किसी भी आयु का बन्ध हो चुका है तो उस जीव को उस पर्याय में अणुव्रत और महाव्रत नहीं हो सकते हैं। यह बात द्रव्य शरीर की पात्रता से कितना गहरा अविनाभावी सम्बन्ध रखती है यह बात पाठक विद्वान अच्छी तरह समझ लेवें।

दूसरी बात धवलाकार की व्याख्या में और गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा का उन्हीं के द्वारा प्रमाण देने से यह भी अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि इस पर्याप्ति अपर्याप्ति प्रकरण में जैसा इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का द्रव्यवेद की मुख्यता का कथन है वैसा ही गोम्मटसार का भी कथन द्रव्यवेद की मुख्यता का है। धवलाकार ने गोम्मटसार का प्रमाण देकर दोनों शास्त्रों का एक रूप में ही प्रतिपादन स्पष्ट कर दिया है। भावपक्षी विद्वान् अपने लेखों में षटखण्डागम के ९३वें सूत्र का विचार करने के लिये षटखण्डागम के प्रमाणों को छोड़ चुके हैं वे लोग प्रायः बहुभाग प्रमाण गोम्मटसार के ही दे रहे हैं और यह बता रहे हैं कि गोम्मटसार जैसे भाववेद का निरूपण करता है। वैसे षटखण्डागम भी भाववेद का ही निरूपण करता है। परन्तु

तिर्यंचो में लागू नहीं होता है।

इस व्याख्या से धवलाकार ने यह स्पष्ट किया है कि सासादन गुणस्थान नारकियो के अपर्याप्त द्रव्य शरीर में नहीं हो सकता है किन्तु तिर्यंचो के द्रव्य शरीर में अपर्याप्त अवस्था मे भी हो सकता है। अपर्याप्त अवस्था का स्वरूप सर्वत्र जीव के मरने जीने से ही बन सकता है। अतः जहां भी अपर्याप्त और पर्याप्त विशेषण होगे वहा सर्वत्र द्रव्य शरीर का ही ग्रहण होगा। यह निश्चित है और प्रकृत मे तो खुलासा सूत्र और व्याख्या से स्पष्ट किया ही जा रहा है।

सम्मामिच्छाइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ। (सूत्र ८८ पृष्ठ १६४ धवला)

अर्थ—योनिमती तिर्यंच सम्यङमिथ्यादृष्टि असंयत सम्यक्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानो में नियम से पर्याप्त ही होते है। इसी का खुलासा धवलाकार करते हैं—

कुतः तत्रैतासामुत्पत्तेरभावात्। (पृष्ठ १६४ धवला)

अर्थ—उपर्युक्त तीन गुणस्थान तिर्यंच योनिमती (द्रव्यस्त्री) के पर्याप्त अवस्था मे ही क्यो होते हैं? अर्थात् अपर्याप्त अवस्था मे क्यो नहीं होते? इसका उत्तर आचार्य देते हैं कि—उपर्युक्त गुणस्थानो वाला जोव मरकर योनिमती तिर्यंचो में उत्पन्न नहीं होता है। इस कथन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यहां पर पर्याप्ति अपर्याप्ति प्रकरण मे गुणस्थानो का

संयत और संयत गुणस्थानों में मनुष्य नियम से पर्याप्त ही होते हैं।

इस द्वितीय सूत्र की व्याख्या धवलाकार ने इस प्रकार की है-

भवतु सर्वेषामेतेषां पर्याप्तत्व नाहारशरीरमुत्थापयतां प्रमत्तानामनिष्पन्नाहारगतषटपर्याप्तीनाम्। न पर्याप्तकर्मोदयापेक्षया पर्याप्तापदेशः तदुदयसत्वाविशेषतोऽसंयतसम्यग्दृष्टीनामपि अपर्याप्तत्वस्याभावापत्तेः। न च संयमोत्पत्त्यवस्थापेक्षया तदवस्थाया प्रमत्तस्य पर्याप्तस्य पर्याप्तत्वं घटते असंयतसम्यग्दृष्टावपि तत्प्रसंगादिति नैष दोषः। (पृष्ठ १६५)

अर्थ—यदि सूत्र में बताये गये सभी गुणस्थान वालों को पर्याप्तपना प्राप्त होता है तो होओ। परन्तु जिनकी आहारक शरीर सम्बन्धी छह पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे आहारक शरीर को उत्पन्न करनेवाले प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवों के पर्याप्तपना नहीं बन सकता है। यदि पर्याप्त नामकर्म के उदय की अपेक्षा आहारक शरीर को उत्पन्न करने वाले प्रमत्त संयतों को पर्याप्तक कहा जावे सो भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि पर्याप्त कर्म का उदय प्रमत्त संयतों के समान असंयत सम्यग्दृष्टियों के भी निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में पाया जाता है इसलिये वहां पर भी अपर्याप्तपने का अभाव मानना पड़ेगा। संयम की उत्पत्ति रूप अवस्था की अपेक्षा प्रमत्त संयत के आहारक की अपर्याप्त अवस्था में पर्याप्तपना बन जाता है यदि ऐसा कहा जाय सो भी

ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार असयत सम्यग्दृष्टियो के भी अपर्याप्त अवस्था मे (सम्यग्दर्शन की अपेक्षा) पर्याप्तपने का सङ्ग आ जायगा ?

उत्तर—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन की अपेक्षा प्रमत्त सयतो को आहारक शरीर सम्बन्धी छह पर्याप्तियो के पूर्ण नहीं होने पर भी पर्याप्त कहा है।

भावपक्षी विद्वान ध्यान से ऊपर की पंक्तियो को पढकर विचार करें।

यहा पर जो व्याख्या धवलाकार ने की है वह इतनी स्पष्ट है कि भाववेद पक्षवालो का शङ्का एव सन्देह के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता है। बहुत सुन्दर हेतुपूर्ण विवेचन है छठे गुणस्थान मे मुनि पर्याप्त है क्योकि उनके औदारिक शरीर पूर्ण हो चुका है इसलिये वहा पर पर्याप्त अवस्था मे संयम का सद्भाव बताया गया है। परन्तु छठे गुणस्थान मे उसी आहार वर्गणा से बनने वाला आहारक शरीर जबतक पूर्ण नहीं है तब तक मुनि को पर्याप्त कैसे कहा जायगा और वहा संयम कैसे होगा ? इसके उत्तर मे पर्याप्त नामकर्म का उदय एव द्रव्यार्थिक नय का अव-लम्बन आदि कहकर जो समाधान किया गया है उससे भलीभाति सिद्ध होता है कि सयत गुणस्थान षटपर्याप्तियो की पूर्णता करने वाले मनुष्य के द्रव्य शरीर के आधार से ही कहा गया है। इसी लिये हमने इतनी व्याख्या लिखकर इस प्रकरण का दिग्दर्शन

कराया है। इतना खुलासा विवेचन होने पर भी जो षट्खण्डागम के समस्त प्रकरण और समस्त कथन को भाववेद की अपेक्षा से ही बताते हैं और द्रव्यवेद (द्रव्यशरीर) की मुख्यता का निषेध करते हैं. उन्होंने इस प्रकरण को एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति सम्बन्धी गुणस्थान विवेचन को पढ़ा और समझा भी है या नहीं? सूत्रों के अभिप्राय से प्रत्यक्ष विरुद्ध उनके कथन पर आश्चर्य होता है।

एव मणुस्स पज्जत्ता। (सूत्र ६१ पृ० १६६ धवल)

अर्थ—जैसा सामान्य मनुष्य के लिये विधान किया गया है वैसा ही पर्याप्त मनुष्य के लिये समझना चाहिये। इस सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि—

कथं तस्य पर्याप्तत्वं? न द्रव्यार्थिकनयाश्रयणात् ओदनः पच्यत इत्यत्र यथा तन्दुलानामेवोदनव्यपदेशस्तथाऽपर्याप्तावस्थायामप्यत्र पर्याप्तव्यवहारो न विरुध्यते इति। पर्याप्तिनामकर्मोदयापेक्षया वा पर्याप्तता।

अर्थ—जिसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है उसे पर्याप्तक कैसे कहा जायगा?

उत्तर—यह शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा उसके भी पर्याप्तपना बन जाता है जिस प्रकार भात पक रहा है ऐसा कहने से चावलों को भात कहा जाता है उसी प्रकार जिसके सभी पर्याप्तियां पूर्ण होने वाली हैं ऐसे जीव के अपर्याप्त अवस्था में भी (निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था में भी) पर्याप्तपने का

व्यवहार होता है। अथवा पर्याप्त नामकर्म के उदय की अपेक्षा से उन जीवों के पर्याप्तपना समझ लेना चाहिये।

यहा पर पर्याप्त नामकर्म के उदय से जिसके छहों पर्याप्तिया पूर्ण हो चुकी हैं उसी मनुष्य को पर्याप्त मनुष्य कहा गया है, इससे यह बात सुगमता से हर एक की समझ में आ जाती है कि पर्याप्त मनुष्यों मे गुणस्थानो का कथन द्रव्य शरीर की मुख्यता से ही किया गया है। जिस प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त के सम्बन्धसे यह कथन है उसी प्रकार आगे के सूत्रों में भी समझना चाहिये।

मानुषी (द्रव्यस्त्री) के गुणस्थान ८८

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्ज-त्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ।

(सूत्र ९२ पृ० १६६ धवलसि)

अर्थ—मानुषियों (द्रव्यस्त्रियों) मे मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थान पर्याप्त अवस्था में भी होते हैं और अपर्याप्त अवस्था मे भी होते हैं।

इस ९२ वें और इसके आगे के ९३ वें सूत्र को कुछ विद्वानों ने विवादस्थ बना लिया है वे इन दोनों सूत्रों मे बताये गये मानुषियों के गुणस्थानों को द्रव्यस्त्री के न बता कर भावस्त्री के बताते हैं। परन्तु उनका कहना पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्धमें कहे गये समस्त पूर्व सूत्रों के कथन से और इस सूत्र के कथन से

भी सर्वथा विरुद्ध है। इसी बात का खुलासा यहां पर इस सूत्र की धवला टीका से करते हैं—

अत्रापि पूर्ववदपर्याप्तानां पर्याप्तव्यवहारः प्रवर्तयितव्यः। अथवा स्यादित्ययं निपातः कथञ्चिदित्यस्मिन्नर्थे वर्तते। तेन स्यात्पर्याप्ताः पर्याप्तनामकर्मोदयाच्छरीरनिष्पत्त्यपेक्षया वा। स्यादपर्याप्ताः शरीरानिष्पत्त्यपेक्षया इति वक्तव्यम्। सुगममन्यत्।

अर्थ—यहां पर भी पहले के समान निर्वृत्त्यपर्याप्तकों में पर्याप्तपने का व्यवहार कर लेना चाहिये। अथवा 'स्यात्' यह निपात कथञ्चित् अर्थ में आता है। इस स्यात् (सिया) पदके अनुसार वे कथंचित् पर्याप्त होती हैं। क्योंकि पर्याप्त नाम कर्म के उदय की अपेक्षा से अथवा शरीर पर्याप्ति की पूर्णता की अपेक्षा से वे द्रव्यस्त्रियां पर्याप्त कही जाती हैं। तथा वे कथंचित अपर्याप्त भी होती हैं। शरीर पर्याप्ति की अपूर्णता की अपेक्षा से वे अपर्याप्त कहलाती हैं।

यहां पर धवलाकार ने "अत्रापि पूर्ववत्" ये दो पद दे कर यह बताया है कि जिसप्रकार पहलेके सूत्रों में पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से मनुष्यों की षटपर्याप्तियों की पूर्णता और अपूर्णता का और उन अवस्थाओं में प्राप्त होने वाले गुणस्थानों का वर्णन किया है ठीक वैसा ही वर्णन यहां परभी किया जाता है इससे यह सिद्ध होता है कि इस ९२ वे सूत्र में भी उसी प्रकार द्रव्य शरीर का कथन है जैसा कि पहले के सूत्रों में मनुष्य तिर्यञ्च आदि का।

कहा गया है।

यहा पर द्रव्य शरीर किस का लिया जाय ? यह शंका खड़ी होती है क्योंकि भावपक्षी विद्वान् कहते हैं कि यहां पर द्रव्य शरीर तो मनुष्य (पुरुष) का है और भावस्त्री ली जाती है।

इस के उत्तर मे इतना समाधान पर्याप्त है कि जिसका इस सूत्र मे विधान है उसी का द्रव्य शरीर लिया जाता है। इस सूत्र में मनुष्य का वर्णन तो नहीं है। उसका वर्णन तो सूत्र ८६ ६०, ६१ इन तीन सूत्रों मे कहा जा चुका है यहा पर इस सूत्र मे मानुषी का ही वर्णन है इस लिये उसी का द्रव्य शरीर लिया जायगा। और भाव का यह प्रकरण ही नहीं है क्योंकि पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से द्रव्य शरीर की निष्पत्ति अनिष्पत्ति की मुख्यता से ही समस्त कथन इस प्रकार से कहा गया है। अत. जो विद्वान इस सूत्र को भावस्त्री का विधायक बताते हैं और द्रव्यस्त्री का विधायक इस सूत्र को नहीं मानते हैं वे इस प्रकरण पर पर्याप्ति अपर्याप्ति के स्वरूप पर, सम्बन्ध समन्वय पर, और धवलाकार के स्फुट विवेचन पर मनन करें। पूर्व से क्रमबद्ध निरूपण किस प्रकार किया गया है, इस बात पर पूरा ध्यान देवें

पहले के सभी सूत्रों मे द्रव्य शरीर की यथानुरूप पात्रता के आधार पर ही संभावित गुणस्थान बताये गये हैं। इस सूत्रकी धवला टीका से भी यही बात सिद्ध होती है कि यह सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है। यदि द्रव्यस्त्री का विधायक यह सूत्र

नहीं माना जावे और भावस्त्री का विधायक माना जावे तो फिर पर्याप्त नाम कर्म के उदय की अपेक्षा और शरीर निष्पत्ति की अपेक्षा से पर्याप्तता का उल्लेख धवलाकार ने जो स्पष्ट किया है वह कैसे घटित होगा ? क्योंकि भावस्त्री की विवक्षा तो भाववेद के उदयकी अपेक्षा से अर्थात् नोकषाय स्त्रीवेदके उदय की अपेक्षा से हो सकती है। परन्तु यहां तो पर्याप्त नाम कर्म का उदय और शरीर पर्याप्ति की अपेक्षा ली गई है। अत. निर्विवाद रूप से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह सूत्र द्रव्यस्त्रीका ही विधायक है

हठात् विवाद में डाला गया
९३वां सूत्र और उसकी धवला टीका का
स्पष्टीकरण

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ।

(सूत्र ९३ पृष्ठ १६६ धवलसिद्धांत)

अर्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत इन तीन गुणस्थानो मे मानुषी (द्रव्यस्त्री) नियम से पर्याप्त ही होती है।

अर्थात् तीसरा, चौथा, और पाचवा गुणस्थान द्रव्यस्त्री की पर्याप्त अवस्था में ही हो सकते हैं। पहले ९२ वें सूत्र में द्रव्यस्त्री

की पर्याप्त अवस्था में और अपर्याप्त अवस्था में पहला और दूसरा यह दो गुणस्थान बताये गये हैं। उसी सूत्र से इस सूत्र में मानुषी की अनुवृत्ति आती है। ९२ वें सूत्र में द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था के गुणस्थानों का वर्णन है और इस ९३ वें सूत्र में उसी द्रव्यस्त्री की पर्याप्त अवस्था में होने वाले गुणस्थानो का वर्णन है। इस ९३ वें सूत्र में पड़े हुये 'णियमा पज्जत्तियाओ' नियम और पर्याप्त अवस्था इन दो पदोंपर पूरा मनन और ध्यान करना चाहिये क्योंकि ये दो पद ही इस सूत्र मे ऐसे हैं जिनसे द्रव्यस्त्री का ग्रहण हो सकता है।

पर्याप्ति शब्द षट पर्याप्ति और शरीर रचना की पूर्णता का विधान करता है। इससे द्रव्य शरीर की सिद्धि होती है। नियम शब्द द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में उक्त गुणस्थानों की प्राप्ति की बाधकता को सूचित करता है। मानुषी शब्द की अनुवृत्ति ऊपर के ९२ वें सूत्र से आती है, उससे यह सिद्ध होता है कि यह द्रव्य शरीर जो पर्याप्त शब्द से अनिवार्य सिद्ध होता है द्रव्यस्त्री का लिया गया है। "९२ और ९३ सूत्रो में जो पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति पदों से द्रव्य शरीर लिया गया है वह द्रव्य मनुष्य का मान लिया जाय तो क्या बाधा है ?" इस शका का समाधान हम ९२ वें सूत्र के विवेचन में कर चुके हैं यहां पर और भी स्पष्ट कर देते हैं कि मनुष्य (पुरुष) द्रव्य शरीर का निरूपण सूत्र ८९ ९०, ९१ इन तीन सूत्रों में किया जा चुका है। वहां उन सूत्रोमें

भी पर्याप्ति अपर्याप्ति पद पड़े हुए हैं। उन पदो से उन मनुष्यो के द्रव्य शरीरकी पूर्णता अपूर्णता का ग्रहण और उन अवस्थाओ में सम्भावित गुणस्थानोका विधान बताया जा चुका है।

यहा ६२ और ६३ वें सूत्रों में मानुषी के साथ पर्याप्ति अपर्याप्ति पद जुड़े हुए हैं इस लिये इन सूत्रों द्वारा पर्याप्त नाम कर्म के उदय तथा षट् पर्याप्तियों एवं शरीररचनाकी पूर्णता अपूर्णता का सम्बन्ध और समन्वय मानुषी के साथ ही होगा, मनुष्य के साथ नहीं हो सकता है।

मानुषी का वाच्यार्थ

"मानुषी शब्द भावस्त्री मे भी आता है और द्रव्यस्त्री में भी आता है।" मानुषी शब्द के दोनों ही वाच्यार्थ होते हैं। इस बात को सभी भाव पक्षी विद्वान् स्वीकार करते हैं। परन्तु इन ६२ और ६३ वें सूत्रो में मानुषी शब्द का वाच्य-अर्थ केवल द्रव्यस्त्री ही लिया गया है, क्योंकि मानुषी पद के साथ पर्याप्ति अपर्याप्ति पद भी जुड़े हुए हैं, वे द्रव्य शरीर की रचना और उसकी पूर्णता अपूर्णताके ही विधायक हैं क्योंकि यह योगमार्गणा का प्रकरण है अत: द्रव्य-शरीर को छोड़ कर भावस्त्री का ग्रहण नहीं होता है, और द्रव्य मनुष्य का विधान सूत्र ८६, ६०, ६१ इन तीन सूत्रों द्वारा किया जा चुका है अतः इन ६२-६३ वें सूत्रों मे मनुष्य द्रव्य शरीर के साथ भावस्त्री का ग्रहण कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है। इस लिये सब प्रकार से उक्त सूत्रो के पदो पर

मनुष्याऽपर्याप्तेष्वपर्याप्तिप्रतिपन्नाभावतः सुगमत्वान्न तत्र वक्तव्य मस्ति"। पृष्ठ १६६-१६७ धवला),

ऊपर ६३वें सूत्र की समस्त धवला का उद्धरण दिया गया है यहां पर हम नीचे प्रत्येक पंक्ति का शब्दशः अर्थ लिखते हैं और उस अर्थ के नीचे (विशेष) शब्द द्वारा उसका खुलासा अपनी ओर से करते हैं—

हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते इतिचेत्—नोत्पद्यन्ते।

अर्थ—हुण्डावसर्पिणी मे स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि जीव क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं? इस शंका के उत्तर मे आचार्य कहते हैं कि—नहीं उत्पन्न होते हैं।

विशेष—यहां पर कोई दिगम्बर मतानुयायी शङ्का करता है कि जिस प्रकार हुण्डावसर्पिणी काल मे तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान के पुत्रियां पैदा हुई हैं, षटखण्डविजयी भरत चक्रवर्ती की भी अविजय (हार) हुई है, उसी प्रकार इस हुण्डावसर्पिणी काल में द्रव्यस्त्रियोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव पैदा हो सकते हैं इसमें क्या बाधा है? उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि इस हुण्डावसर्पिणी काल मे भी द्रव्यस्त्रियों में सम्यग-दृष्टि जीव पैदा नहीं हो सकते हैं। यहा पर इतना समझ लेना चाहिये कि धवलाकार ने मानुषी के स्थान में 'स्त्रीषु' पद दिया है उससे द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण होता है। दूसरे—सम्यक्त्व सहित

कारण है और द्रव्यस्त्रियों के इस सूत्र में सम्यग्दर्शन के साथ देश सयम भी बताया गया है। जब उस द्रव्यस्त्री की पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन और देश संयम भी हो सकता है तब आगे के गुणस्थान और मोक्ष भी उसके हो सकती है? इस शङ्का के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह शङ्का भी ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्य स्त्री वस्त्र सहित रहती है इसलिये वह अप्रत्याख्यान (असयत-देश सयत) गुणस्थान तक ही रहती है, ऐसी अवस्था में उसके सयम (छठा गुणस्थान) पैदा नहीं हो सकता है।

यहा पर शंकाकार ने द्रव्य स्त्री पद कहकर शंका उठाई है, और उत्तर देते समय आचार्य ने भी द्रव्यस्त्री मानकर ही उत्तर दिया है। क्योंकि वस्त्रसहित होने से द्रव्यस्त्री के संयम नहीं हो सकता है, वह असयम गुणस्थान तक ही रहती है यह कथन द्रव्य स्त्री के लिये ही हो सकता है। भावस्त्री की अपेक्षा यदि ६३वें सूत्र मे होती तो उत्तर मे आचार्य 'वस्त्र सहित और अप्रत्याख्यान गुणस्थित' ऐसे पद कदापि नहीं दे सकते थे। भाव स्त्री के तो वस्त्र का कोई सम्बन्ध नहीं है और उसके तो ६ गुण-स्थान तक होते हैं। और १४ गुणस्थान तथा मोक्ष तक इसी शास्त्र मे बताई गई है। इससे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि शङ्का तो द्रव्य स्त्री का नाम लेकर ही की गई है, उत्तर भी आचार्य ने द्रव्यस्त्री का ग्रहण मानकर ही दिया है।

यदि ६३वें सूत्र में 'सञ्जद' पद होता तो उत्तर में आचार्य

वहां १४ गुणस्थान और मोक्ष होने की कोई शका नहीं उठाई गई है क्योंकि सयम पद से यह बात सुतरां सिद्ध है। उसी प्रकार यदि ६३वें सूत्र में भी सयम पद होता तो फिर १४ गुणस्थान और मोक्ष का होना सुतरा सिद्ध था, शका उठाने का फिर कोई कारण ही नहीं था। सूत्र मे सयम पद नही है और द्रव्यस्त्री के पर्याप्त अवस्था मे सम्यग्दर्शन और देश सयम तक बताये गये हैं तभी शका उठाई गई है जैसे 'पर्याप्त अवस्थामे उसके सम्यग्दर्शन और देश सयम भी हो जाता है तो आगे के गुणस्थान भी हो जायगे और मोक्ष भी हो जायगी ?'

फिर शका तो कैसी भी की जा सकती है उत्तर पर भी तो ध्यान देना चाहिये। यदि सूत्र में सयम पद होता तो उत्तर में यह बात कहने के लिये थोड़ा भी स्थान नहीं था कि 'वस्त्र सहित होने से तथा असंयम गुणस्थान में ही रहने से संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।' जब सूत्रमे सयमपद माना जाता है तब 'सयम नहीं हो सकता है' ऐसा सूत्र-विरुद्ध कथन धवलाकार उत्तर मे कैसे कर सकते थे ? कभी नहीं कर सकते थे। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि ६३वां सूत्र भाववेद की अपेक्षा से नहीं है किन्तु द्रव्य स्त्री वेद की प्रधानता से ही कहा गया है अतः उसमे सयम पद किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकता है। धवलाकार के उत्तर को ध्यान मे देने से ६३ वें सूत्र में "संजद" पद के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं हो सकती है। आगे और भी खुलासा देखिये—

भावसंयमस्तासां सवाससामपि अविरुद्ध इतिचेत्, न तासां भावसंयमोऽस्ति भावाऽसंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादान्यथाऽनुपपत्तेः

अर्थ— शंका— उन मानुषियों के वस्त्र सहित रहने पर भी भाव संयम के होने में तो कोई विरोध नहीं है ?

उत्तर— ऐसी भी शंका ठीक नहीं है, उनके भाव संयम भी नहीं है। क्योंकि भाव असंयम का अविनाभावी वस्त्रादि का ग्रहण है, वह ग्रहण फिर अन्यथा नहीं उत्पन्न होगा।

विशेष—शंकाकार ने यह शंका उठाई है कि यदि द्रव्य-स्त्रियों के वस्त्र रहते हैं तो वैसी अवस्था में उनके द्रव्य संयम (नग्नता-दिगम्बर मुनि रूप) नहीं हो सकता है तो मत होओ। परन्तु भावसंयम तो उनके वस्त्रधारण करने पर भी हो सकता है, क्योंकि वह तो आत्मा का परिणाम है वह हो जायगा। इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह बात भी नहीं है वस्त्र धारण करने पर उन स्त्रियों के भाव संयम भी नहीं हो सकता है। क्योंकि भाव संयम का विरोधी वस्त्र ग्रहण है। वह वस्त्र स्त्रियों के पास रहता है। इसलिये उनके असंयम भाव ही रहता है। संयम भाव नहीं हो सकता है। अर्थात् बिना वस्त्रों का परित्याग किये छठा गुणस्थान नहीं हो सकता है।

यहां पर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ९३वें सूत्र में जिन मानुषियों का कथन है वे वस्त्र सहित हैं, इस लिये उनके द्रव्य-संयम और भाव संयम दोनों ही नहीं होते हैं। इस स्पष्ट खुलासा

से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे मानुषिया द्रव्यस्त्रियां ही हैं। यदि भावस्त्री का प्रकरण और कथन होता तो वस्त्र सहितपना उनके कैसे कहा जाता, जबकि भावस्त्री नौवें गुणस्थान तक रहती है और यदि ६३वें सूत्र मे सयम पद होता तो आचार्य यह उत्तर कदापि नहीं दे सकते थे कि उन स्त्रियो के द्रव्य सयम भी नहीं है और भावसयम भी नहीं है।

दूसरे—यदि सूत्र मे सयम पद होता तो 'द्रव्यस्त्रियों के इसी सूत्र से मोक्ष हो जायगी' इसके उत्तर मे आचार्य यह कहे विना नहीं रहते कि यहा पर भावस्त्री का प्रकरण है, भावस्त्री की अपेक्षा रहने से द्रव्यस्त्रियो की मोक्ष का प्रश्न खडा ही नहीं होता। परन्तु आचार्य ने ऐसा उत्तर कहीं भी इस धवला मे नहीं दिया है। प्रत्युत यह बार २ कहा है कि स्त्रिया वस्त्र सहित रहती हैं इसलिये उनके द्रव्य सयम और भाव सयम कोई सयम नहीं हो सकता है इससे यह बात स्पष्ट-खुलासा हो जाती है कि यह ६३वे सूत्र की मानुषी द्रव्यस्त्री है और इसीलिये सूत्रमें सयम पद का सर्वथा निषेध आचार्य ने किया है। उसका मूल हेतु यह है कि यह योग मार्गणा-औदारिक काययोग का कथन है, औदारिक काययोग मे पर्याप्त अवस्था रहती है। इसलिये द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण इस सूत्र मे अनिवार्य सिद्ध होता है। अतः सयम पद सूत्र में सर्वथा असम्भव है। इस सब कथन को स्पष्ट देखते हुये भी भावपक्षी विद्वानों का सूत्र मे सयम पद बताना आश्चर्य मे डालता है।

ग्रन्थ में भी इस पद का कोई उल्लेख नहीं है। यह शंका एक सम्बन्धित-आशंका रूप में सामान्य शंका है जो इस सूत्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है इस प्रकार की आशंका भी तभी हुई है क्योंकि इस आर्ष (सूत्र) में दोनों सयमों का सर्वथा अभाव बताकर स्त्रियों के बकुमात्रण और असंयम गुणस्थान बताया गया है। ऐसी दशा में ही यह शंका की गई है फिर जहां पर स्त्रियों के १४ गुणस्थान कहे गये हैं वे किस दृष्टि से कहे गये हैं? इस शंका के समाधान से भी सिद्ध हो जाता है कि यह ६३वां सूत्र द्रव्यस्त्री का प्रतिपादक है। भावस्त्री के प्रकरण (वेदानुवाद आदि) में ही चौदह गुणस्थान कहे गये हैं इस सूत्र में तो योग मार्गणा और पर्याप्ति सम्बन्ध का प्रकरण होनेसे द्रव्यस्त्री का ही कथन है और इसीलिये इस ६३वें सूत्र में पांच गुणस्थान बताये गये हैं। यदि सूत्र में संजद पद होता तो जैसे वेदानुवाद आदि आगे के सूत्रों में सर्वत्र मणुस्सणिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति। (सूत्र १०८) यानी 'मिथ्यादृष्टिसे लेकर ६वें गुणस्थानतक' ऐसा कथन कियाहै यहां प्रवृत्ति करके नौ गुणस्थान सर्वत्र बताये गये हैं वैसे इस सूत्र में भी प्रवृत्ति करके बता देते। परन्तु यहां पर ऐसा कथन नहीं किया गया है। जहां प्रवृत्ति शब्द से भी गुणस्थानों का कथन है यहां पर चौदह गुणस्थानों की कोई शंका भी नहीं उठाई गई।

यहां पर ६३वें सूत्र में यदि संजद पद होता तो फिर चौदह गुणस्थान जहां बताये गये हैं वे कैसे बनेंगे ऐसी शंका का कोई

कारण ही नहीं था। क्योंकि सञ्जद पद के रहने से चौदह गुण-स्थानों का होना सुतरां सिद्ध था।

भाववेदो बादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दश गुणस्थानाना सम्भव इतिचेन्न अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात् गतिस्तु प्रधाना, न सा आराद् विनश्यति।

अर्थ—शङ्का—भाववेद तो बादर कषाय से ऊपर नहीं रहता है इसलिये वहां पर चौदह गुणस्थानों का सम्भवपना नहीं हो सकता है?

उत्तर—यह शङ्का भी ठीक नहीं है, यहां पर वेद की प्रधानता नहीं है। गति तो प्रधान है वह चौदह गुणस्थान में पहले नष्ट नहीं होती है।

विशेष—शङ्काकार का यह कहना है कि अब भाववेद की अपेक्षा से चौदह गुणस्थान बताये गये हैं ऐसा कहते हो तो भाव वेद तो बादर कषाय—नौवें गुणस्थान तक ही रहता है। वेद तो नौवें गुणस्थान के सवेदभाग में ही नष्ट हो जाता है फिर भावस्त्री के चौदह गुणस्थान कैसे घटित होंगे? इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि जहां पर भावस्त्री के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं वहां पर वेद की प्रधानता नहीं है किन्तु गति की प्रधानता है। मनुष्यगति चौदह गुणस्थान तक बनी रहती है इसी अपेक्षासे १४ गुणस्थान कहे गये हैं।

वेदविशेषणायां गतौ न तानि सम्भवन्तीतिचेन्न विनष्टेऽपि विशे-

षणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्वाऽविरोधात्।

अर्थ—शङ्का—वेद विशेषण सहित गति में तो चौदह गुण-स्थान नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर—यह शङ्का भी ठीक नहीं, विशेषण के नष्ट होने पर भी उपचार से उसी व्यवहार को धारण करने वाली मनुष्य गति मे चौदह गुणस्थानों की सत्ता का कोई विरोध नहीं है।

विशेष—शङ्काकार का यह कहना है कि जब भावस्त्रीवेद नौवें गुणस्थान में ही नष्ट हो जाता है तब भाववेद की अपेक्षा से भी चौदह गुणस्थान कैसे बनेंगे ? उत्तर मे आचार्य कहते है कि यद्यपि वेद नष्ट हो गया है फिर भी वेद के साथ रहने वाली मनुष्यगति तो है ही है। इसलिये जो मनुष्यगति नौवें गुणस्थान तक वेद सहित थी वही मनुष्यगति वेद नष्ट होने पर भी अब भीहै, इसलिये (ग्यारहवे बारहवे और तेरहवे गुणस्थानोमे कषाय नष्ट होने पर भी योग के सद्भाव में उपचार से कही गई लेश्या के समान) वेद रहित मनुष्यगति मे भी चौदह गुणस्थान कहे गये हैं। वे भूतपूर्व नय की अपेक्षा स उपचार से भाववेद की अपेक्षा से कहे गये हैं।

मनुष्याऽपर्याप्तेष्वपर्याप्तिप्रतिपक्षाभावतः सुगमत्वात् न तत्र वक्तव्यमस्ति।

अर्थ—अपर्याप्त मनुष्योमे अपर्याप्ति के प्रतिपक्ष का अभाव होने से सुगम है, इस लिये वहा पर कुछ वक्तव्य नहीं है।

विशेष—मनुष्यो के पर्याप्त मनुष्य, सामान्य मनुष्य, मानुषी और अपर्याप्त मनुष्य, इन चार भेदो मे अन्त के अपर्याप्त मनुष्यों को छोड कर शेष तीन भेदो मे विशेष वक्तव्य इस लिये है कि वहा पर्याप्ति का प्रतिपक्षी निर्वृत्यपर्याप्ति है। परन्तु मनुष्य के लब्ध्यपर्याप्तक भेद मे उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं है। अत. उस सम्बन्ध मे कोई विशेष वक्तव्य भी नहीं है।

इस लब्ध्यपर्याप्तक के कथन से भी केवल द्रव्यवेद का ही कथन सिद्ध होता है, क्योंकि उसमे भाववेद की अपेक्षा स कथन बनता ही नहीं है।

बस ९३ वें सूत्र मे पडे हुये पदो का और धवलाकार का पूरा अभिप्राय हमने यहां लिख दिया है। अर्थ मे धवला की पंक्तियो का ठीक शब्दार्थ किया है और जहा विशेष शब्द है वहा हमने उसी धवला के शब्दार्थ को विशेषरूप से स्पष्ट किया है। कोई शब्द या वाक्य हमने ऐसा नहीं लिखा है जो सूत्र और धवला के वाक्यो से विरुद्ध हो। ग्रन्थ और उसके अभिप्राय के विरुद्ध एक अक्षर लिखने को भी हम असभ्य अपराध एव शास्त्र का अवर्णवादात्मक सब से बढ़कर पाप समझते हैं। इस विवेचन से पाठक एव भावपक्षी विद्वान् शास्त्र-मर्मस्पर्शी बुद्धि से गवेषणा पूर्वक विचार करें कि सूत्र ९३वें में "संजद" पद जोड़नेकी किसी प्रकार भी गुञ्जायश हो सकती है क्या? उत्तर मे पूर्वापर क्रमवर्ति निरूपण, सूत्र एव धवला के पदो पर विचार करनेसे वे

यहो निर्णीत सिद्ध फलितार्थ निकालेंगे कि ६३वें सूत्र मे किसी प्रकार की सयत पद के जोडने की सम्भावना नहीं है। क्योंकि वह सूत्र पर्याप्त द्रव्यस्त्री के हो गुणस्थानों का प्रतिपादक है।

इन सूत्रों को भाववेद विधायक मानने में
—अनेक अनिवार्य दोष—

भावपक्षी विद्वान् इन सूत्रों को भाववेद विधायक ही मानते हैं उनके वैसा मानने में नीचे लिखे अनेक ऐसे दोष उत्पन्न होते हैं, जो दूर नहीं किये जा सकते हैं, उन्हीं का दिग्दर्शन हम यहां

कराते हैं।

पट्खण्डागम के धवल सिद्धांत का ८९वां सूत्र अपर्याप्त मनुष्य के लिये कहा गया है, उसके द्वारा अपर्याप्त मनुष्य के पहला दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान बताये गये हैं, परन्तु सभी भावपक्षी विद्वान् उस सूत्र को भी भाववेद वाला ही बताते हैं, अतः उनके कथनानुसार भावमनुष्य का ही विधायक ८९वा सूत्र ठहरता है। ऐसी अवस्था मे उसे द्रव्यस्त्री शरीर और भाव पुरुष वेद का विधायक भी माना जा सकता है। ऐसा मानने से द्रव्य स्त्री की अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यग्दर्शन सहित उत्पत्ति सिद्ध होती है। यदि यह कहा जाय कि ८९ सूत्र भाववेद से भी पुरुष-वेद का विधायक है और द्रव्यवेद भी इस सूत्र में द्रव्य पुरुष ही मानना चाहिये, जैसा कि श्री फूलचन्द् जी शास्त्री अपने लेख मे लिखते हैं कि— "सो मालूम नहीं पड़ता कि पण्डित जी (हम)

भाववेदी विद्वान अपर्याप्ति का अर्थ जन्मकाल मे होने वाली शरीर रचना अथवा शरीर निष्पत्ति रूप अर्थ तो मानते नहीं है। यदि अपर्याप्ति का अर्थ वे शरीर की अपूर्णता करते हैं तब तो ८९वें सूत्र से द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद की ही सिद्धि होगी। क्योकि यहा पर वेद मार्गणा का कथन तो नहीं है जो कि नोकषाय जनित भाववेद रूप हो किन्तु शरीर नामकर्म, आंगोपांग नामकर्म और पर्याप्ति नामकर्म के उदय से होने वाली शरीर निष्पत्ति का कथन है। वह द्रव्यवेद की विवक्षा में ही घटेगा। और जिस प्रकार इस सूत्र द्वारा द्रव्यवेद माना जायगा तो ९२-९३ सूत्रो द्वारा भी द्रव्यस्त्री का कथन मानना पड़ेगा। परन्तु जबकि वे लोग सर्वत्र भाववेद मानते हैं तब इस ८९वें सूत्र मे अपर्याप्त मनुष्य के सयोग केवली गुणस्थान भी अनिवार्य सिद्ध होगा। क्योकि समुद्घात की अपेक्षासे औदारिक मिश्र और कार्माण काययोग मे अपर्याप्त अवस्था मानी गई है अतः वहा पर तेरहवा गुणस्थान भी सिद्ध होगा। परन्तु सूत्र में पहला दूसरा और चौथा, ये तीन गुणस्थान ही अपर्याप्त मनुष्य के बताये गये हैं? सो कैसे? इसका समाधान भाववेद-वादी विद्वान क्या करते हैं? सो स्पष्ट करें।

दूसरी बात हम उनसे यह भी पूछना चाहते हैं कि एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सर्वत्र निर्वृत्यपर्याप्तक का अर्थ वे क्या करते हैं? षटखण्डागम मे सर्वत्र (१०० सूत्रो तक) शरीर की अनिष्पत्ति (शरीर रचना की अपूर्णता) अर्थ किया

है परन्तु ऐसा ही हो और द्रव्यवेद स्त्रीवेद तथा भाववेद पुरुषवेद ऐसा विषम वेद नहीं हो सके इसमें भी क्या बाधक प्रमाण है ? जबकि भाववेद 'पायेण समा कहिं विसमा' इस गोम्मटसार की गाथा के अनुसार विषम भी होता है ।

इसी प्रकार ६२वें सूत्र में मानुषी का विधान अपर्याप्त अवस्था का है उसमे उसके दो गुणस्थान पहला और दूसरा बताया गया है । वहा पर भाववेद स्त्रीवेद तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि मानुषी का कथन है । परन्तु भाववेद और स्त्रीवेद होने पर भी वहां द्रव्य वेद पुरुषवेद भी हो सकता है इसमें भी कोई बाधा नहीं है । वैसी दशा मे ६२वें सूत्र द्वारा भाववेदी मानुषी और द्रव्यवेदी पुरुष के अपर्याप्त अवस्था म दो गुणस्थान ही नहीं होंगे किन्तु तीसरा असंयत सम्यग्दृष्टि नाम का चौथा गुणस्थान भी होगा उसे कौन रोक सकता है ? उसी प्रकार भाववेद स्त्रीवेद की अपर्याप्त अवस्था मे सयोग केवली गुणस्थान भी अनिवार्य सिद्ध होगा । फिर इस सूत्र में दो ही गुणस्थान क्यों कहे गये हैं ? इस पर भाववेदी विद्वानो को पूर्ण विचार करना चाहिये ।

यहां पर भाववेदी विद्वानो का यह उत्तर है कि स्त्रीवेद का उदय चौथे गुणस्थान में नहीं होता है इसके लिये वे गोम्मटसार कर्मकांड की अनेक गाथाओं का प्रमाण देते है कि अपर्याप्त अवस्था मे चौथे गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है, उस की व्युच्छित्ति दूसरे सासादन गुणस्थान में ही हो जाती है । यह कहना उनका अधूरा है पूरा नहीं है । वे एक अश अपने प्रयोजन

आनुपूर्वी का उदय नाहीं। नपुंसक के नरक विना तीन आनुपूर्वी का उदय नाहीं है।"

इस कथन से इस बात के समझ मे कोई सन्देह किसी को भी नहीं हो सकता है कि यह सब कथन द्रव्यस्त्री और द्रव्यनपुंसक का है। बहुत ही पुष्ट एवं अकाट्य प्रमाण यह दिया गया है कि चौथे गुणस्थान में चारों आनुपूर्वी का उदय स्त्रीवेदी के नहीं है। आनुपूर्वी का उदय विग्रह गति मे ही होता है। क्योंकि वह क्षेत्र विपाकी प्रकृति है। और सम्यग्दर्शन सहित जीव मरकर द्रव्यस्त्री पर्याय मे जाता नहीं है अतः किसी भी आनुपूर्वी का उदय वहां नहीं होता है। परन्तु पहले नरक में, सम्यग्दर्शन सहित मरकर जाता है अतः वहा नरकानुपूर्वी का तो उदय होता है शेष तीन आनुपूर्वी का उदय नहीं होता है। इस कथन से स्पष्ट है कि अपर्याप्त अवस्था मे जन्म मरण एव आनुपूर्वी का अनुदय होने से द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण ऊपर की गाथा और टीका से होता है।

परन्तु ६२वें सूत्रको यदि भाववेदका ही निरूपक माना जाता है तो वहा जन्म मरण एव आनुपूर्वी के अनुदय आदि का तो कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भाववेद स्त्री के अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान होने मे कोई बाधा नहीं है जहा द्रव्यवेद पुरुष हो और भाववेद स्त्री हो वहा अपर्याप्त अवस्था मे चौथा गुणस्थान नहीं होता है ऐसा कोई प्रमाण हो तो उपस्थित करना चाहिये। गोम्मटसार के जितने भी प्रमाण-- सारो थी वेद छिदी, आदि इस स्त्री अपर्याप्त के प्रकरण मे दिये जाते हैं वे तो सब द्रव्य स्त्री

पर्याय मे उत्पन्न नहीं होने की अपेक्षा से हैं। फिर यह बात भी विचित्र है कि अपर्याप्त मानुषो का विधायक तो सूत्र है सो उनका ग्रहण नहीं कर शरीर की अपूर्णता द्रव्य पुरुष को बताई जाय? यह कौन सा हेतु है? जहा जिसकी अपर्याप्त होगी वहा उसी का अपर्याप्त शरीर लिया जायगा। यदि यह कहा जाय कि भाव स्त्री और द्रव्यस्त्री दोनो रूप ही ६२वें सूत्र को मानेंगे तो भी द्रव्य-स्त्री का कथन सिद्ध होता है। यह कहना भी प्रमाण शून्य है कि द्रव्यवेद पुरुष का होने पर भी चौथे गुणस्थान मे अपर्याप्त अवस्था मे भावस्त्री वेद का उदय नहीं होता है। जबकि भावस्त्री वेद के उदय मे नौवा गुणस्थान होता है तब चौथा होने मे क्या बाधकता है? हो तो भावपक्षी विद्वान प्रगट करें। अतः इस कथन से सिद्ध है कि ६२वा सूत्र द्रव्यस्त्री का ही प्रतिपादक है। गोम्मटसार की उपर्युक्त २८७ गाथा से यह भी सिद्ध है कि गो—म्मटसार भी द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर का विधान करता है। यह निर्विवाद बात है और प्रत्यक्ष है।

—भाववेद मानने से ६३वें सूत्र में दोष—

इसी प्रकार ६३वें सूत्र को यदि भाववेद का ही प्रतिपादक माना जायगा तो जैसे पर्याप्त अवस्था में भावस्त्री वेद के साथ द्रव्य पुरुष वेद हो सकता है, वैसे द्रव्यस्त्री वेद भी हो सकता है। ६३वे सूत्र मे भाव और द्रव्य समवेद भी माना जा सकता है। वैसी अवस्था मे सूत्र ६३वें मे 'सञ्जद' पद जोड़ने से द्रव्य स्त्री के चौदह गुणस्थान सिद्ध होगे, उसका निरसन भावपक्षी विद्वान्

क्या कर सकते हैं ? इसलिये उपर्युक्त सभी सूत्र पर्याप्ति अपर्याप्ति के साथ गुणस्थानों का विधान होने से द्रव्यवेद के ही विधायक हैं, ९२-९३वें सूत्र भी द्रव्यस्त्री के ही विधायक हैं। वैसा सिद्धांत-सिद्ध निर्णय मानने से न तो 'संयत' पद जोड़ा जा सकता है और न उपर्युक्त दूषण ही आ सकते हैं।

९३वां सूत्र द्रव्यवेदका ही क्यों है ? भाववेद क्यों नहीं ?

९०वें सूत्रमें जो मानुषी पद है वह मानुषी द्रव्यस्त्री ही ली जाती है। भावस्त्री नहीं ली जा सकती है इसका एक मूल-खास हेतु यही भावपक्षी विद्वानों को समझ लेना चाहिये कि यहां पर वेद मार्गणा का प्रकरण नहीं है जिससे भाववेद रूप नोकषाय के उदय जनित भाव परिणाम लिया जाय। किन्तु यहां पर औदारिक काययोग व पर्याप्ति का प्रकरण होनेसे आंगोपांग नामकर्म शरीर नामकर्म गतिनामकर्म एवं निर्माण आदि नामकर्मोंके उदय से बनने वाला द्रव्यस्त्री का शरीर ही नियम से लिया जाता है। यह बात इस ९३ सूत्रमें और ९२ आदि पहलेके सूत्रोंमें भावपक्षी विद्वानों को ध्यान में रखकर ही विचार करना चाहिये।

ताड़पत्र प्रति में 'संजद' शब्द

इसी ९३वें सूत्र में 'संजद' पद ताड़पत्र प्रति में बताया जाता है, इस सम्बन्ध में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है, हम तो केवल दो बातें इस सम्बन्ध में कह देना पर्याप्त समझते हैं। पहली बात तो यह है कि यदि ताड़पत्र की प्रतियों में 'संजद' पद

जायगा इसलिये, हम इन सब सूत्रों को छोड देते हैं। परन्तु इतना समझ लेना चाहिये कि देवगति के सामान्य और विशेष कथन में जहां पर्याप्ति अपर्याप्ति में सम्भव गुणस्थानों का सूत्रकार और धवलाकार ने कथन किया है वहां सर्वत्र विग्रहगति, कार्मण शरीर मरण, उत्पत्ति आदि के विवेचन से यह स्पष्ट कर दिया है कि वह सब कथन भी द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। पाठकगण! एवं भावपक्षी विद्वान चाहें तो सूत्र ६४ से लेकर सूत्र १०० तक सात सूत्रों एवं उनकी धवल टीका को मुद्रित ग्रन्थ में पढ़ लेवें, उदाहरणार्थ एक सूत्र हम यहां देते हैं।

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ९६ पृष्ठ १६८ धवल सिद्धांत)

अर्थ सुगम है।

इसकी धवला टीका में यह स्पष्ट किया गया है। कि कथं? तेनगुणेन सह तेषां मरणाभावात् अपर्याप्तकालेऽपि सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्योत्पत्तेरभावात्। इसका अर्थ यह है कि देव तीसरे गुणस्थान में नियम से पर्याप्त हैं, यह क्यों? इसके उत्तर में कहते हैं कि तीसरे गुणस्थान में मरण नहीं होता है। तथा अपर्याप्त कालमें भी इस गुणस्थान की उत्पत्ति नहीं होती है, यहां पर सर्वत्र गुणस्थानों का कथन जन्म मरण और पर्याप्त द्रव्य शरीर के आधार पर ही कहा गया है। इसके सिवा षटखंडागम के ९८वें सूत्र की धवला में 'सनत्कुमारादुपरि न स्त्रियः समुत्पद्यन्ते सौ— धर्मादाविव तदुत्पत्त्यप्रतिपादात् तत्र स्त्रीणामभावे कथं तेषां देवा—

चार का वर्णन भी किया गया है। यथा—

सनत्कुमारमहेन्द्रयोः स्पर्शप्रवीचाराः तत्रतन देवा देवांगना-स्पर्शनमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते इतियावत् तथा देव्योऽपि।

(धवला पृष्ठ १६६)

अर्थात् सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो स्वर्गों में स्पर्श प्रवी-चार है। इन स्वर्गों के देव देवांगनाओं के स्पर्श करने मात्र से अत्यन्त प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार देवियों भी उन देवों के स्पर्शमात्र से प्रीति प्राप्त हो जाती हैं।

यह सब द्रव्यवेद का बिलकुल खुलासा वर्णन है। द्रव्यपुल्लिंग द्रव्यस्त्रीलिंग के बिना क्या स्पर्श सम्भव है? अतः इस द्रव्यवेद के विधान का भी भावपक्षी विद्वान सर्वथा निषेध एवं लोप कैसे कर रहे हैं? सो बहुत आश्चर्य की बात है।

—मूल बात—

श्री षट्खण्डागम के जीवस्थान सत्प्ररूपणा द्वार में जो गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओं में गुणस्थानों का कथन है। वह सब द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर के ही आश्रित है, उसी प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्ति के साथ गुणस्थानों का कथन भी द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर के आश्रित हैं। क्योंकि षटपर्या-प्तियोंकी पूर्णता और अपूर्णता का स्वरूप द्रव्य शरीर रचना के सिवा दूसरा नहीं हो सकता है, इसलिये सूत्रकार आचार्य भूत-बलि पुष्पदन्त ने तथा धवलाकार आचार्य वीरसेन ने उक्त चारों मार्गणाओं एवं पर्याप्तियों अपर्याप्तियों में जो गुणस्थानों की

सम्भावना और सद्भाव बताया है, वह द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की मुख्यता से ही बताया है। वहा भाववेद की अपेक्षा से कोई कथन नहीं है। बस यही मूल बात भावपक्षी विद्वानो को समझ लेना चाहिये, इसके समझ लेनेपर फिर '९३वा सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है। और वैसी अवस्था मे उस सूत्रमे 'सञ्जद' पद नहीं हो सकता है। अन्यथा द्रव्यस्त्री के चौदह गुणस्थान और मोक्ष की प्राप्ति होना भी सिद्ध होगा, जो कि हीन संहनन एवं वस्त्रादि का सद्भाव होने से सर्वथा असम्भव है। ये सब बाते भी उनकी समझ मे सहज आ जायगी, इसी मूल बात का दिखाने क लिये हमने उन चारो मार्गणाओ मे और पर्याप्तियों में गुणस्थानों का दिग्दर्शन इस लेख (ट्रैक्ट) मे कराया है। केवल ९३वें सूत्रका विवेचन कर देने से विशेष स्पष्टीकरण नहीं होता, और संयत पद की बात विवादमें डाल दी जाती। अतः उन उद्धरणोके देनेसे लेख अवश्य बढ़ गया है परन्तु अब संयतपद के विषय में विवाद का थोड़ा भी स्थान नहीं रहा है।

१००वें सूत्रमें इस द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद के विधायक योग निरूपण और पर्याप्तियो के कथन को समाप्त करते हुये धवलाकार स्वयं स्पष्ट करते हैं—

एवं योगनिरूपणावसर एव चतसृषु गतिषु पर्याप्तापर्याप्तकाल-विशिष्टासु सकलगुणस्थानानामभिहितमस्तित्वम्। शेषमार्गणासु अयमर्थः किमिति नाभिधीयते इतिचेत्‌ नोच्यते, अनेनैव गतार्थ—त्वात्‌ गतिचतुष्टयव्यतिरिक्तमार्गणाभावात्‌।

(पृष्ठ १७० धवला)

अर्थ—इस प्रकार योग मार्गणा के निरूपण करने के अवसर पर ही पर्याप्त और अपर्याप्तकाल युक्त चारों गतियो मे सम्पूर्ण गुणस्थानो की सत्ता बता दी गई है।

शङ्का—बाकी की (जो वेद कषाय आदि मार्गणाओ का आगे विवेचन करेंगे उन) मार्गणाओं में यह विषय (पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से) क्यो नहीं कहा जाता है ?

उत्तर—इसलिये नहीं कहा जाता है कि इसी कथन से सवत्र गतार्थ हो गया है। क्योकि चारों गतियों को छोड़कर और कोई मार्गणायें नहीं है।

इस प्रकरण समाप्ति के कथन से धवलाकार ने यह बात सिद्ध कर दी है कि आगे की वेद कषायादि मार्गणाओं में पर्याप्तियों और अपर्याप्तियो के सम्बन्ध से गुणस्थानो का विवेचन नहीं किया है। अतएव उन वेदादि मार्गणाओं में द्रव्यशरीर का वर्णन नहीं है किन्तु भाववेद का ही वर्णन है। और भाववेद का कथन होने से उन मार्गणाओं मे भावको की विवक्षा से चौदह गुणस्थान बताये गये हैं। धवलाकार के इस कथनसे और पर्याप्ति अपर्याप्ति से सम्बन्धित गुणस्थानो के विधायक सूत्रो के कथन से यह बात सिद्ध हो गई कि षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र में केवल भाववेद का ही कथन नहीं है जैसा कि भाववेद-वादी विद्वान् बता रहे हैं किन्तु उसमें चार मार्गणाओ एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति के विवेचन तक द्रव्यवेद का ही मुख्य रूप से कथन है और उस प्रकरण के

समाप्त होने पर वेदादि मार्गणाओं मे भाववेद की मुख्यता से ही कथन है।

वेदादि मार्गणाओं में केवल भाववेद ही क्यों लिया गया है ?

इसका भी मुख्य हेतु यह है कि वेद मार्गणा मे नोकषाय रूप कर्मोदय मे गुणस्थान बताये गये है। कषाय मार्गणा मे कषायोदय जनित कर्मोदय मे गुणस्थान बताये गये है, ज्ञान मार्गणा मे मतिज्ञानादि (आवरण कर्म भेदो मे) मे गुणस्थान बताये गये है, इसी प्रकार संयम दर्शन लेश्या भव्यत्व सम्यक्त्व संज्ञित्व आहारत्व इन सभी मार्गणाओ के विवेचन में १०१ सूत्र से लेकर १७७ तक ७७ सूत्रो मे और उन सूत्रो की धवला टीका मे कहीं भी पर्याप्ति अपर्याप्ति, शरीर रचना, आदि का उल्लेख नहीं है। पाठक और भाववेदी विद्वान ग्रन्थ निकालकर अच्छी तरह देख लेवे यही कारण है कि वे वेदादि मार्गणाएं भावों की ही प्रतिपादक है द्रव्य शरीर का उनमे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये उन वेदादि मार्गणाओ मे मानुषियो के नव और चौदह गुणस्थान बताये गये है।

इतना स्पष्ट विवेचन करने के पीछे अब हम उन वेदादि मार्गणाओ के विधायक सूत्रों और उनकी धवला टीका का उद्धरण देना व्यर्थ समझते है। जिन्हें कुछ भी आशङ्का हो वे ग्रन्थ खोल कर प्रत्येक सूत्र को और धवला टीका को देख लेवें।

—भावपक्षी विद्वानों के लेखों का उत्तर—

यद्यपि हमने ऊपर श्री षटखण्डागम जीवस्थान—सत्प्ररूपणा—धवलसिद्धांत के अनेक सूत्र और धवला के उद्धरण देकर यह बात निर्विवाद एवं निर्णीतरूप मे सिद्ध कर दी है कि उक्त सिद्धात शास्त्र में द्रव्यवेद का भी वर्णन है। और ६३वें सूत्र में द्रव्य स्त्री का ही कथन है अत उस सूत्र में 'संजद' पद जोड़ने से द्रव्य स्त्री के चौदह गुणस्थान सिद्ध होगे, तथा उसी भव से उसके मोक्ष भी सिद्ध होगी। अत: उस सूत्र में 'संजद' पद सर्वथा नहीं हो सकता है। इस विशद एवं सप्रमाण कथन से उन समस्त विद्वानों की सब प्रकार की शङ्काओं का समाधान भले प्रकार हो जाता है ज कि इस षटखण्डागम सिद्धात शास्त्र को केवल भाववेद का ही निरूपक बताते हैं तथा उसे द्रव्यवेद का निरूपक सर्वथा नहीं बताते हैं उन्होंने जितने भी प्रमाण गोम्मटसार आदि के भाववेद की पुष्टि के लिये दिये हैं वे सब द्रव्यवेद विधायक प्रमाण हैं। उन प्रमाणों से हमारे कथन की ही पुष्टि होती है। और यह कभी त्रिकाल में भी नहीं हो सकता है कि षटखण्डागम के विरुद्ध गोम्मटसार का विवेचन हो। क्योंकि गोम्मटसार भी तो श्री षटखण्डागम के आधार पर ही उसका संक्षिप्त सार है। भावपक्षी विद्वान उस गोम्मटसार के भी समस्त कथनमें द्रव्यवेद का अभाव बताते हुये केवल भाववेद का प्रतिपादक उसे बताते हैं सो उनका यह कहना भी गोम्मटसार के कथन को देखते हुये प्रत्यक्ष बाधित है। अतः उनके लेखों का उत्तर हमारे विधान से सुतरां हो

चर्चा है, वह कोई शङ्का का विषय नहीं है। और हमारा उस कथन से कोई मतभेद भी नहीं है। हां, उन्होंने जो सत संख्या आदि आठ अनुयोगो का नाम लेकर मनुष्यगति के चारों भेदो में चौदह गुणस्थान बताये हैं सो यह बात उनकी षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र से कुछ भेदों तक विरुद्ध पड़ती है, क्योंकि उक्त सिद्धात शास्त्र मे प्रतिपादित आठ अनुयोगद्वार में जो सत्प्ररूपणा नाम का पहला अनुयोग द्वार है उसके अनुसार जो गति, इन्द्रिय काय और योग, इन आदि की चार मार्गणाओं में तथा उसी योग मार्गणा से सम्बन्धित पर्याप्ति अपर्याप्तियों में गुणस्थानों का समन्वय बताया गया है वह द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की मुख्यता से बताया गया है। वहा पर सत्प्ररूपणा-अनुयोग द्वार से पर्याप्त मानुषी के पाच गुणस्थान ही बताये गये हैं, चौदह नहीं बताये गये हैं, और न चौदह गुणस्थान उक्त चार मार्गणाओ मे तथा पर्याप्त अवस्थामे मानुषीके सिद्ध ही हो सकते हैं जैसाकि हम अपने लेख में स्पष्ट कर चुके हैं; फिर जो सत् द्वार से जो मानुषी के चौदह गुणस्थान सोनी जी ने बिना किसी प्रमाण के अनुयोगों का नामोल्लेख करते हुये एक पंक्ति में कह डाले हैं वह उनका कथन आगम विरुद्ध पड़ता है। इसी प्रकार उन्होंने आगे चलकर ९३वें सूत्र के सञ्जद पद रहित और सञ्जद पद सहित, ये दो विकल्प उठाकर मानुषी के चौदह गुणस्थान बताते हुये, उस सूत्रमें सञ्जद-पद की पुष्टि की है वह भी सिद्धात शास्त्र से विरुद्ध है। यह बात हमने अपने पूर्व लेख में बहुत स्पष्ट कर दी है कि सूत्र-

संयत पद सूत्र में देने से सिद्ध हो जाते हैं।

इसके लिये हमारा यह समाधान है कि इस सूत्र में पर्याप्तक पद के निर्देश से मानुषी से द्रव्य स्त्री का ही ग्रहण है। अन्यथा आपकी व्याख्या—'गर्भ और अन्तर्मुहूर्त में शरीर की पूर्णता की' कैसे बनेगी ? और द्रव्य शरीर के कारण पांच गुणस्थान ही स्त्री के इस सूत्र द्वारा मानना ठीक है। संयत पद देना यहा पर द्रव्य स्त्री का मोक्ष साधक होगा। परन्तु आगे वेदादि मार्गणाओं मे जहा योग और पर्याप्तियो का सम्बन्ध नहीं है तथा केवल औदयिक भावो का ही गुणस्थानो के साथ समन्वय किया गया है वहा पर मानुषी के (भावस्त्री) के चौदह गुणस्थान बताये ही गये हैं उनमें कोई किसी को विरोध नहीं है। और वहाँ पर उन सूत्रों मे ही अनिवृत्ति करण एवं अयोग केवली पद पड़े हुये हैं, इसलिये यहा ६३ सूत्रमें 'संयत पद जोड़े बिना भाव मानुषी के चौदह गुणस्थान कैसे सिद्ध होंगे?' ऐसी आशङ्का करना भी व्यर्थ ठहरती है। यहा यदि उन सूत्रों में अयोग केवली आदि पद नहीं होते तो फिर कहां से अनुवृत्ति आवेगी ऐसी शङ्का भी होती। यदि ६३वें सूत्र में संयत पद दिया जायगा तो यह भारी दोष अवश्य आवेगा कि द्रव्यस्त्री के गुणस्थानो का षटखण्डागम मे कोई सूत्र नहीं रहेगा। जो कि सिद्धांत शास्त्र के अधूरेपन का सूचक होगा। और अंगैक-देशज्ञाता भूतबलि पुष्पदन्त की कमी का भी द्योतक होगा फिर पर्याप्ति अपर्याप्ति पदों का निवेश ही संयत पद का उस सूत्र में सर्वथा बाधक है। अतः पहला पाठ ही

उद्धरण देना पर्याप्त है।

मणुस्सपज्जत्तेसु मिच्छाइट्ठि दव्वपमाणेण केवडिया, कोडा-कोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्णं वग्गाण सत्तण्णं वग्गाणं हेट्ठदो।

(सूत्र ४५ पृष्ठ १२७)

षटखण्डागम जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम

इस सूत्र द्वारा पर्याप्त मनुष्यों में से मिथ्यादृष्टि मनुष्यो की संख्या द्रव्य प्रमाण से बताई गई है। इसी सूत्र की व्याख्या में धवलाकार ने पर्याप्त मनुष्यों की संख्या वही बताई है जो गो-म्मटसार जीवकांड में उनतीस अङ्क प्रमाण द्रव्य मनुष्यो की बताई गई है। उसी में से ऊपर के गुणस्थान वालों की संख्या घटाकर मिथ्यादृष्टियों की संख्या बताई गई है। मनुष्य पर्याप्त और संख्या का उल्लेख सूत्र में दिया गया है। गोम्मटसार जीव-कांड की गाथा १५६ और १५७ द्वारा—

सेढीसुईअंगुल आदिम तदियपदभाजिदे गूणा।
सामण्ण मणुसरासी पंचमकदिघणसमा पुण्णा॥

(इस गाथा में) पर्याप्त मनुष्यों की संख्या बताई गई है। यही प्रमाण धवलाकार ने ऊपर के सूत्र की व्याख्या मे इस रूप से दिया है—

वेरूवस्स पंचमवग्गेण छट्ठमवग्गं गुणिदे मणुस्स पज्जत्तरासी होदि आदि। (पृष्ठ १२७ धवला)

इसके अनुसार धवलाकार ने पृष्ठ १२६ में— ७९२२८१६२५

७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ यह २९ अङ्क प्रमाण पर्याप्त मनुष्यों की संख्या बताई है। और यही राशि गोम्मटसार की उक्त १५७ गाथा में बताई गई है। दोनों का पाठक मिलान कर लेवें। यह संख्या द्रव्य मनुष्यों की है।

इस प्रकार गोम्मटसार और षट्खण्डागम दोनों ही द्रव्य मनुष्यों की संख्या बताते हैं। द्रव्यस्त्रियों की संख्या भी इसी प्रकार दोनों में समान बताई गई है उसे भी देखिये—

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।
सामण्णा पुण्णूणा मणुव अपज्जत्तगा होंति॥

अर्थ—पर्याप्त मनुष्यों का जितना प्रमाण है उसमें तीन चौथाई ($\frac{3}{4}$) द्रव्यस्त्रियों का प्रमाण है। इस गाथा में जो मानुषी पद है वह द्रव्यस्त्री का ही वाचक है। इस गाथा की टीका में स्पष्ट लिखा हुआ है यथा—

पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्थभागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति।

गो० जी० टीका पृष्ठ ३८४

इस टीका में मानुषीणां पद के आगे द्रव्यस्त्रीणां पद, संस्कृत टीकाकार ने स्पष्ट किया है। उसका हिन्दी अर्थ पण्डित प्रवर टोडरमल जी ने इस प्रकार किया है—

पर्याप्त मनुष्यनि का प्रमाण कह्या ताका च्यारि भाग कीजिये तामें तीन भाग प्रमाण मनुष्यणी द्रव्यस्त्री जाननी।

(गो० जी० टीका पृष्ठ ३८५)

जो द्रव्यस्त्रियों का प्रमाण ऊपर गोम्मटसार द्वारा बताया गया है वही प्रमाण द्रव्यस्त्रियों का षटखण्डागम के द्रव्य प्रमाणानुगम मे बताया गया है देखिये—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडा-कोडाकोडोए उपरि कोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाण हेट्ठदो।

(सूत्र ४८ पृष्ठ १३०)

षटखण्डागम द्रव्यानुगम

एत्तस्स सुत्तस्स वक्खाणं मणुसपज्जत्त सुत्तवक्खाणेण तुल्लं।

इसके आगे जो मानुषियो की सख्या धवलाकार ने सूत्र निर्दिष्ट कोडाकोडी आदि पदो के अनुसार बताई है वह वही है जो गोम्मटसार मे द्रव्यस्त्रियो की बताई गई है। इसी प्रकार सव्वट्ठ-सिद्धिविमाणवासिदेवा दव्वपमाणेण केवडिया संखेज्जा।

(सूत्र ७३ पृष्ठ १४३ धवल)

इस सूत्र में सर्वार्थ सिद्धि के देवो को संख्या बताई गई है। वह द्रव्य शरीरी देवों की है। इसी सूत्र के नीचे व्याख्या में धवलाकार लिखते हैं—

मणुसिणी रासीदो तिउणमेत्ता हवंति।

इसका अर्थ है कि सर्वार्थसिद्धि के देव मनुषिणियों के प्रमाण से तिगुने हैं यहांपर मानुषी द्रव्यस्त्री का वाचक है। गोम्मटसारमे-

सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा।

(गाथा ४१ पृष्ठ १०६२)

धवल द्रव्य प्रमाणानुगम

तथा च—

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्व—पमाणेण केवडिगा असंखेज्जा।

(सूत्र ७७ पृष्ठ १५५)

धवल द्रव्य प्रमाणानुगम

अर्थ दोनो सूत्रों का सुगम है।

सूत्र की व्याख्या में धवलाकार लिखते हैं—

एत्थ अपज्जत्तवयणेण अपज्जत्तणाम कम्मोदयसहिद जीवा—घेतव्वा। अण्णहा पज्जत्तणाम कम्मोदय सहिद णिव्वत्ति अपज्जत्ताणं वि अपज्जत्त वयणेण गहणप्पसंगादो। एवं पज्जत्ता इतिवुत्ते पज्ज-त्तणाम कम्मोदय सहिद जीवा घेत्तव्वा अण्णहा पज्जत्तणाम कम्मोदय सहिद णिव्वत्ति अपज्जत्ताणं गहणाणुववत्तीदो।

बिति चउरिंदियेत्ति वुत्ते बीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय जादि-णाम कम्मोदय सहिदजीवाणं गहणं।

(पृष्ठ १५६ धवला)

अर्थ—यहां पर सूत्र ७७ में आये हुये अपर्याप्त वचन से अपर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीवो को ग्रहण करना चाहिये अन्यथा पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त निर्वृत्यपर्याप्तक जीवो का भी अपर्याप्त इस वचन से ग्रहण प्राप्त हो जायगा। इसीप्रकार पर्याप्त ऐसा कहने से पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये अन्यथा पर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त निर्वृत्य—

पर्याप्तक जीवों का ग्रहण नहीं होगा।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ऐसे जो सूत्र में पद हैं उनसे द्वीन्द्रियजाति त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म के उदय से युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये।

यहां पर जब सर्वत्र नामकर्म के उदय से रचे गये द्रव्यशरीर और जाति नामकर्म के उदय से रची गई द्रव्येन्द्रियों का जीवों में विधान किया है तब इतना स्पष्ट विवेचन होने पर भी 'षट्खण्डागम में केवल भाववेद का ही कथन है द्रव्यवेद का कथन ग्रन्थांतरों से देखो' ऐसा जो भावपक्षी विद्वान कहते हैं वह क्या इस षट्खण्डागम के ही कथन से सर्वथा विपरीत नहीं ठहरता है? अवश्य ठहरता है। यहां पर तो भाववेद का कोई विकल्प ही खड़ा नहीं होता है। केवल द्रव्यशरीरी जीवों की संख्या द्रव्यप्रमाणानुगम द्वार से बताई गई है। सोनी जी प्रभृति विद्वान विचार करें। सोनी जी ने द्रव्यप्रमाणानुगम का प्रमाण अपने लेख में दिया है इसीलिये प्रसङ्गवश हमें उक्त प्रकरण में इतना खुलासा और भी करना पड़ा।

सभी अनुयोग द्वारों में द्रव्यवेद भी कहा गया है।

जिस प्रकार ऊपर सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगम इन दो अनुयोग द्वार में द्रव्यवेद का स्फुट कथन है। उसी प्रकार अन्य सभी अनुयोग द्वारों में भी द्रव्यवेद का वर्णन है। उनमें से केवल थोड़े से उद्धरण हम यहां देते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीये णेरइएसु मिच्छा—

इट्टि-पहुडि जाव असजद सम्माइट्ठित्ति केवडि खेत्ते लोगस्स असखज्जदि भागे।

(सूत्र ५ पृष्ठ २८ क्षेत्रानुगम)

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।

(सूत्र १० पृ० ४१ क्षेत्रप्रमाणानुगम)

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकायिया, तेउकाइया, वाउ-कायिया बादरपुढविकाइया आदि (यह सूत्र बहुत लम्बा है)

(सूत्र २२ पृष्ठ ४४ क्षेत्रानुगम)

भवणवासिय वाण वेंतर जोदिसियदेवेसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं। लोगस्स असखेज्जदिभागो।

(सूत्र ४६ पृष्ठ ११४ स्पर्शनानुगम)

बीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्तएहि केवडिय-खेत्तं फोसिद लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

(सूत्र ५८ पृष्ठ १२१ स्पर्शानुगम द्वार)

मणुस्स अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच, जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।

(सूत्र ८३ पृष्ठ १६० कालानुगम द्वार)

सव्वट्ठसिद्धि विमाणवासियदेवेसु असंजदसम्माइट्ठी केवचिर कालादो होंति णाणाजीवं पडुच सव्वदा।

(सूत्र १०५ पृष्ठ१६४ कालानुगम द्वारा)

इंदियाणुवादेण एइंदिया वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।

(सूत्र ७ पृष्ठ १२० भङ्ग विचयानुगम)

वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।

सूत्र ८ पृ० १२० भङ्ग विचयानुगम द्वार)

सव्वत्थोवा मणुस्सा	सूत्र २
णेरइया असंखेज्ज गुणा	सूत्र ३
देवा असंखेज्ज गुणा	सूत्र ४
सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ	सूत्र ८
मणुस्सा असंखेज्ज गुणा	सूत्र ९
इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पचिंदिया	सूत्र १६
चउरिंदिया विसेसाहिया	सूत्र १७
तींदिया विसेसाहिया	सूत्र १८
वीइन्दिया विसेसाहिया	सूत्र १९ पृष्ठ २६२
	(अल्पवहुत्वानुगम द्वार)
णाणावरणीयं	सूत्र ५
दंसणावरणीयं	सूत्र ६
वेदणीयं	सूत्र ७
मोहणीयं	सूत्र ८
आउअं	सूत्र ९
णामं	सूत्र १०

गोद सूत्र ११

अंतराय चेदि सूत्र १२

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पचपयडीओ सूत्र १३

(पृ० ५-६ जीवस्थान चूलिका)

मणुसा मणुस पज्जत्ता मिच्छाइट्ठी सखेज्जवासाउसा
मणुसा मणुसेहि कालगद समाणा कदि गदीओ गच्छति ?

(सूत्र १४१ चूलिका)

चत्तारि गदीओ गच्छेति णिरयगई तिरिक्खगई मणुमगई देवगई चेदि ।

(सूत्र १४२ पृष्ठ २३४ चूलिका)

णिरसेसु मच्छत्ता सव्व णिरयेसु गच्छंति । १४३ सूत्र

तिरक्खेसु गच्छंत्ता सव्व तिरिक्खेसु गच्छति । १४४ सूत्र

मणुसेसु गच्छत्ता सव्व मणुस्सेसु गच्छंति । १४५ सूत्र

देवेसु गच्छता भवणवासिप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण—वासिय देवेसु गच्छंति ।

(१४६ सूत्र पृष्ठ २३५ चूलिका)

इन समस्त सूत्रो को धवला टोका मे और भी स्पष्ट किया गया है। उन सब उद्धरणो का उल्लेख करने से लेख बहुत बढ जायगा। सत्तेप से भिन्न २ अनुयोग द्वारो के सूत्र यहा दिये गये है। इन सूत्रो से द्रव्यवेद एव द्रव्य शरीर का स्पष्ट विवेचन पाया जाता है। भाववेदी विद्वान सभी अनुयोग द्वारो को भाववेद निरूपक ही बताते हैं। आश्चर्य है।

सोनी जी ने जो राजवार्तिक का प्रमाण दिया है वह भी उनके अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर सकता है, कारण स्त्रियों के साथ पर्याप्त विशेषण जोडकर वार्तिक मे चौदह गुणस्थान बताये जाते तब तो उनका कहना अवश्य विचारणीय होता परन्तु इस एक ही वाक्य मे 'भावलिंगापेक्षया 'द्रव्यलिंगापेक्षेण तु पञ्चाद्यानि, ये दो पद पडे हुये है जो विषय को स्पष्ट करते हुये पर्याप्त विशेषण को द्रव्यप्रकरण के साथ ही जोडने मे समर्थ है। राजवार्तिककार ने तो एक ही वाक्य मे भाव और द्रव्य दोनो का कथन इतना स्पष्ट कर दिया है कि उसमे किसी प्रकार का कोई सदेह नही हो सकता है। उन्होने स्त्री की पर्याप्त अवस्था के स्त्री भाववेद मे चौदह गुणस्थान और और द्रव्यलिंग द्रव्यस्त्री की अपेक्षा से आदि के पाच गुणस्थान स्पष्ट रूप से बता दिये है। फिर भावपक्षी विद्वान किस अव्यक्त एव अन्तर्निहित बात का लक्ष्य कर इस राजवार्तिक के प्रमाण को भाववेद की सिद्धि मे उपस्थित करते है सो समझ मे नही आता ? श्री राजवार्तिककार ने और भी द्रव्यस्त्रीवेद की पुष्टि आगे के वाक्य द्वारा स्पष्ट रूप से करदी है देखिये—

अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्।

इसका यह अर्थ है कि मानुषी की अपर्याप्त अवस्था मे आदि के दो गुणस्थान ही होते है क्योंकि सम्यग्दर्शन के साथ स्त्री पर्याय मे जीव पैदा नहीं होता है। यहा पर स्त्री पर्याय मे जब पैदा होने का निषेध किया गया है तब मानुषी शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से द्रव्यस्त्री ही राजवार्तिककार ने अपर्याप्त अवस्था मे बता

हम इसी लेख में पहले कह चुके हैं। भावानुगम द्वार का उल्लेख कर जो मानुषी के साथ संजद पद दिया गया है वह भावस्त्री का बोधक है परन्तु ९२वें ९३वें सूत्रों में औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग तथा तदन्तर्गत पर्याप्ति अपर्याप्ति का ग्रहण है, इन्हीं के सम्बन्ध से उन दोनों सूत्रों का कथन है इसलिये वहां पर द्रव्य स्त्री वेद का ही ग्रहण होने से संजद पद का ग्रहण नहीं हो सकता है।

आगे सोनी जी ने एक हास्योत्पादक आशङ्का उठाई है वे लिखते हैं--

"नं० ९३ की मनुष्यिणियां केवल द्रव्यस्त्रियां हैं थोड़ी देर के लिये ऐसा भी मान लें परन्तु जिन सूत्रों में मानुषिणियों के चौदह गुणस्थानों में द्रव्य प्रमाण, चौदह गुणस्थानों में क्षेत्र, स्पर्श, काल, अल्पबहुत्व कहे गये हैं वे मनुष्यिणियां द्रव्यस्त्रियां हैं या नहीं, यदि हैं तो उनके भी मुक्ति होगी। यदि वे द्रव्यस्त्रियां नहीं हैं तो ९३वें सूत्र की मनुष्यिणियां द्रव्यस्त्रियां ही हैं यह कैसे? न्याय तो सर्वत्र एकसा होना चाहिये।"

यह एक विचित्र शङ्का और तर्कणा है, उत्तर में हम कहते हैं कि—असंज्ञी तिर्यंच के मन नहीं होता है परन्तु संज्ञी तिर्यंच के मन होता है। ऐसा क्यों? अथवा भव्य मनुष्य तो मोक्ष जा सकता है अभव्य नहीं जा सकता है ऐसा क्यों? जबकि तिर्यंच पद संज्ञी असंज्ञी दोनों जगह है। और मनुष्य पद भी भव्य अभव्य दोनों जगह है फिर इतना बड़ा भेद क्यों? न्याय तो

बल से जाना जाता है। इन सब बातों का परिपूर्ण एवं सप्रमाण समाधान हम इसी ट्रैक्ट मे पहले अच्छी तरह कर चुके हैं। यहां पिष्ट—पेषण करना व्यर्थ है।

आगे इन्होंने 'आदि इत्यादि' इस प्रमाण से बताया है कि द्रव्यस्त्रियों और नपुंसकवेद वालो के वस्त्रादि का त्याग नहीं है, उसके बिना संयम होता नहीं है अतः अर्थापत्ति से यह बात आगमांतरों से जानी जाती है कि छठे आदि सयत स्थानो मे एक द्रव्य पुरुषवेद ही है। परन्तु सोनी जी को यह बात समझ लेनी चाहिये। कि यहां पर अर्थापत्ति और आगमान्तर से जानने की कोई आवश्यकता नही है। इसी आगम मे द्रव्यस्त्रियों के संयतासयत तक ही गुणस्थान बताये गये हैं उनके सयत गुणस्थान नही हैं इसीलिये तो वस्त्र त्याग का अभाव हेतु दिया गया है। इस स्फुट कथन से आगमांतर से जानने की क्या बात है? हां ९३वे सूत्र में सञ्जद पद जोड देने से ही ग्रन्थ विपर्यास और आगमांतर से जानने आदि की अनेक मिथ्याझंझटें और वस्तु वैपरीत्य पैदा हुये बिना नहीं रहेगा। तथा ९३वें सूत्रमे सञ्जद पद की सत्ता स्वीकार कर लेने पर निकट भविष्य में ऐसा साहित्य प्रसार होगा जो श्वेतांबरो दिगम्बर के मौलिक भेदों को मेटकर सिद्धांत-विघात किये बिना नहीं रहेगा इस बात को सोनी जी प्रभृति विद्वानो को ध्यान मे लाना चाहिये।

बस १३ अगस्त १९४६ के खण्डेलवाल जैन हितेच्छु मे छपे

इन पंक्तियोंका अर्थ नागी जी ने किया है । यहां हम तो यह बात उनसे पूछते हैं कि ऊपर तो आप पर्याप्त अवस्था मे भाव स्त्री और द्रव्य पुरुष मे सम्यग्दृष्टि के उत्पन्न होने का निपेध करते है और उसके प्रमाण मे जो धवल की पंक्ति आपने दी है उससे आहारक ऋद्धि का निपेध होता है, न कि भावस्त्री द्रव्यपुरुष मे सम्यग्दृष्टिके मरकर पैदा होनेका । बात दूसरी और प्रमाण दूसरा यह तो अनुचित एवं अग्राह्य है । भाव स्त्रीवेद के उदय में द्रव्य पुरुष के संयमी अवस्था मे छठे गुणस्थान में आहारकऋद्धि नहीं होती है यह तो इसलिये ठीक है कि छठे गुणस्थान में स्थूल

यह अर्थ ग्रन्थके सङ्गत नहीं है किन्तु आहार समुद्घातका सम्बन्ध जोडकर आनुमानिक (अंदाजिया) है। वास्तविक अर्थ ऊपर धवला का यही ठीक है कि द्रव्य मानुषियों में असंयत सम्यग्दृष्टियो का उपपाद नहीं होता है। और भावमानुषियों मे तै समुद्घात तथा आहारक समुद्घात प्रमत्त गुणस्थानमें नहीं होता है। ऊपर का वाक्य द्रव्यस्त्रियो के लिये और नीचे का वाक्य भावस्त्रियो के लिये है। ऐसा अर्थ ही ठीक है इसके दो हेतु हैं एक तो यह कि वाक्य मे उववादो णत्थि यह पद है, इसका अर्थ जन्म है। जन्म द्रव्यवेद मे ही सम्भव है, भाववेद में सर्वथा असम्भव है। यह बात सर्वथा हेतु संगत और ग्रन्थ सङ्गत नहीं है कि मानुषी मे तो उपपाद का निषेध किया जाय और बिना किसी पद और वाक्य के उसका अर्थ द्रव्यमनुष्य मे लिया जाय। अत. ऊपर धवला का धवल वाक्य द्रव्यस्त्री के लिये ही है। इसका दूसरा हेतु यह है कि उक्त ऊपर के वाक्य के बाद 'पमत्ते तेजाहार समुग्घादा णत्थि' इस दूसरे वाक्य मे 'पमत्ते' यह पद धवलाकार ने दिया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह कथन भाववेद की अपेक्षा से है और पहली पंक्ति का कथन द्रव्यवेद की अपेक्षा से है। यदि दोनो वाक्यो का अर्थ भावस्त्री ही किया जाता तो फिर धवलाकार पमत्ते पद क्यो देते? आलापाधिकार में सर्वत्र यथायोग्य एवं यथा सम्भव सम्बन्ध समन्वय करने के लिये सर्वत्र द्रव्यवेद और भाववेद की अपेक्षा से वर्णन किया गया है। यदि सोनी जी दोनों वाक्यो का भावस्त्री ही अर्थ ठीक समझते हैं तो

वे ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित करें जिससे 'भावस्त्री वेद-विशिष्ट द्रव्य पुरुष की अपर्याप्त अवस्था' मे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं जाते हैं' यह बात सिद्ध हो। ऐसा प्रमाण इन्होंने या दूसरे विद्वानो ने आज तक एक भी नहीं बताया है जितने भी प्रमाण गोम्मटसार के वे प्रगट कर रहे हैं वे सब द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था मे सम्यग्दृष्टि के नहीं उत्पन्न होने के हैं हमने जो अर्थ किया है उसके लिये हम यहा प्रमाण भी देते हैं—

णत्थि णउंसयवेदो इत्थीवेदो णउंसइत्थि दुग
पुव्वत्त पुरुण जोगग चदुसु ठाणेसु जाणेज्जो।

(गो० क० गा० ४६७ पृ० ६५६)

इसकी संस्कृत टीका मे लिखा है—'असंयते वैक्रीयकमिश्र—कार्मणयोगयोः स्त्रीवेदो नास्ति, असंयतस्य स्त्रीष्वनुत्पत्तेः पुनः असंयतौदारिक-मिश्रयोगे प्रमत्ताहारकयोश्च स्त्रीपंढवेदौ न स्तः इति ज्ञातव्यम्'। इस गाथा और संस्कृत टीका से यह बात सर्वथा खुलासा हो जाती है कि चौथे गुणस्थान मे वैक्रियिक मिश्र और कार्मण योग मे स्त्रीवेद का उदय नहीं है क्योंकि असंयत मरकर स्त्री मे पैदा नहीं होता। और असंयत के औदारिक मिश्र योग मे तथा प्रमत्त के आहारक और आहार मिश्र योग मे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदो का उदय नहीं है। इस कथन से हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है। और सोनी जी का कथन ग्रन्थ से विरुद्ध पड़ता है।

'मनुषिणीआ भी भावस्त्रियां होती हैं' ऐसा जो सोनी जी जगह २ बताते हैं सो ऐसा तो हम भी मानते हैं। मानुषी शब्द

भावस्त्री और द्रव्यस्त्री दोनों में आता है। जहां जैसा प्रकरण हो वहा वैसा अर्थ लगाया जाता है।

आगे चलकर सोनी जी गोम्मटसार जीवकाड की—'ओरालं-पज्जत्ते' और 'मिच्छे सासणसम्मे' इन दो गाथाओ का प्रमाण देकर यह बता रहे हैं कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय वाले असंयत सम्यग्दृष्टि मे औदारिक मिश्र काययोग नहीं होता है किन्तु वह पुंवेद के उदय मे ही होता है। सो यह औदारिक मिश्र योग का कथन तो द्रव्यस्त्री की अपेक्षा से ही बन सकता है। उनका प्रमाण ही उनके मन्तव्य का बाधक है। आगे उन्होंने प्राकृत पञ्च सग्रह का प्रमाण देकर वही बात दुहराई है कि चौथे गुणस्थान मे औदारिक मिश्र योग मे स्त्रीवेद का उदय नहीं है केवल पुंवेद का ही उदय है। सो इस बात मे आपत्ति किसको है? यह सोनी जी का प्रमाण भी स्वयं उनके मन्तव्य का घातक है। क्योंकि उन सब प्रमाणो से 'द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था मे सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न नहीं होता है' यही बात सिद्ध होती है, न कि सोनी जी के मन्तव्यानुसार भावस्त्री की सिद्धि। भावस्त्री का तो जन्म मरण ही नहीं फिर उसकी दृष्टि से औदारिक मिश्रयोग कैसे बनेगा इसे सोनी जी स्वयं सोचें यदि उन्हें हमारे कथन मे शङ्का हो तो गोम्मटसार के विशेषज्ञो से विचार लेवें। आगे का प्रमाण भी पाठक देखें—

अयदापुण्णे णहि थी संढोविय घम्मणारय मुच्चा
थी संढयदे कमसो णाणचउ चरिमतिण्णाणु।

गाथा २८७ गो० कम०

इस गाथा का प्रमाण देकर सोनी जी ने बताया है कि असंयत सम्यग्दृष्टि की अपर्याप्त अवस्था में स्त्रीवेद का उदय नहीं है। और पहले नरक को छोड़कर नपुंसकवेद का भी उदय नहीं है।

सोनी जी के इन प्रमाणों को देखकर हमें पं० पन्नालाल जी दूनी कृत विद्वज्जन बोधक का स्मरण हो आया है, उसमें उन्होंने जितने प्रमाण सचित्त पुष्प फल पूजन, केसर चर्चन आदि के निषेध में दिये हैं वे सब प्रमाण सचित्त पुष्प फल पूजन आदि के साधक हैं। हमें आश्चर्य होता है कि उन्होंने वे प्रमाण क्यों दिये? उन्होंने प्रमाण तो उन वस्तुओं के साधक दिये हैं, परन्तु अर्थ उन का उन्होंने उल्टा किया है। जोकि उन प्रमाणों से सर्वथा विपरीत पड़ता है। ऐसे ही प्रमाण श्रीमान् पं० पन्नालाल जी सोनी दे रहे हैं। वे भावस्त्री की सिद्धि चाहते हैं, उनके दिये हुये प्रमाण द्रव्यस्त्री की सिद्धि करते हैं। नहीं तो गोम्मटसार कर्मकांड की २८७वीं गाथा का अर्थ संस्कृत टीका और पण्डित प्रवर टोडरमल जी के हिन्दी अनुवाद में पाठक पढ़ लेवें। हम उपर्युक्त गाथा का खुलासा मय टीका और पं० टोडरमल जी के हिन्दी अनुवाद सहित इस ट्रैक्ट में पहले लिख चुके हैं अतः यहां अधिक कुछ नहीं लिखते हैं।

आगे सोनी जी ने गोम्मटसार जीवकांड के आलापाधिकार का प्रमाण देकर यह बताया है कि 'मनुषिणी के चौथे गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप कहा गया है। वे यह भी लिखते हैं कि यह

सिद्धांत इसी बात को पुष्ट करता है कि गत्यंतर का सम्यग्दृष्टि जीव अपने साथ स्त्रीवेद का उदय नहीं लाता है। इसलिये अपर्याप्तालाप नहीं होता है, वे प्रमाण देते हैं—

मूलोघं मणुसतिये मणुसिणि अयदम्हि पज्जत्ते।

सोनी जी के इस प्रमाण से भी यही बात सिद्ध होती है कि—सम्यग्दृष्टि मरकर द्रव्यस्त्री पर्याय में नहीं जाता है। इसलिये आलापाधिकार के उपर्युक्त प्रमाण ने चौथे गुणस्थान में द्रव्यस्त्री के एक पर्याप्तालाप ही आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने बताया है।

इस गाथा की टीका में लिखा है कि 'तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव योनिमतीनां पंचमगुणस्थानादुपरिगमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति।

(गो० जी० गाथा वही सोनी जी के दिये हुये प्रमाण की ७१४ पृष्ठ ११५३ टीका)

टीकाकार लिखते हैं कि—सामान्यादि तीन प्रकार के मनुष्यों के चौदह गुणस्थान होते हैं। परन्तु तो भी योनिमती मनुष्य (द्रव्यस्त्री) के असंयत में एक पर्याप्तालाप ही होता है, तथा योनिमती पांचवें गुणस्थान से ऊपर नहीं जाती इसलिये उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता है। यह सब द्रव्यस्त्री का ही विचार है। इस बात का और भी खुलासा इसी आलापाधिकार की ७१३वीं गाथा से हो जाता है। यथा—

णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णोदु।

इनके खण्डन में संक्षेप में हम इतना लिखना ही पर्याप्त समझते हैं कि आचार्यों ने जिस प्रकार पुरुषवेद और स्त्रीवेद की प्रधानता से भिन्न २ सूत्रों द्वारा स्पष्ट विवेचन किया है वैसा विवेचन नपुं-सकवेद की प्रधानता से नहीं किया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जिस प्रकार पुरुष और स्त्रीवेद वालों के लिंग और योनि नियत चिन्ह सर्वजन प्रसिद्ध हैं और प्रत्यक्ष हैं। उस प्रकार नपुंसकवेद का कोई नियत चिन्हांकित द्रव्य रूप नहीं पाया जाता है क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय जीवों तक सभी नपुंसक वेदी हैं। एक वनस्पतियों में तथा एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्री जीवों में कोई नियत आकार नहीं है इसलिये नियत चिन्ह नहीं होने से नपुंसकवेद की प्रधानता से कथन करना अशक्य है। जहां भाववेद और द्रव्यवेद में एक नियत शरीर रूप है वहां नपुंसकों का कथन सूत्र द्वारा किया ही है। संख्या भी गिनाई गई है जैसे नारकियों की। मनुष्यों में पुरुष स्त्री के समान कोई एक नियमित चिन्ह उनके नहीं होने से द्रव्य नपुंसकों का पृथक् निर्देश सूत्र द्वारा नहीं किया गया है। षट्खण्डागम कार की गलती तो सम्भव नहीं है। हां वर्तमान उन विद्वानों की समझ की कमी और बहुत भारी गलती अवश्य है जो महान आचार्यों की एवं टीकाकारों की गलती समझ लेते हैं।

आगे सोनी जी ने ९३वें सूत्रमें संयत शब्द होना चाहिये इस सम्बन्ध में धवला टीका के वाक्यों पर ऊहापोह किया है, इस संयत शब्द के विषय में बहुत विवेचन इसी ट्रैक्ट के दो स्थलों

एवं ८६-६०-६१ सूत्रों में आपने लेखो मे बताई है वह तदवस्थ है। उसका कोई समाधान भावपक्षी विद्वानो की ओर से नहीं हुआ है।

शास्त्रीजी ने जो यह बात लिखी है कि "वैसे तो पटखण्डागम कषायप्राभृत आदि सभी सैद्धान्तिक ग्रन्थो म वा धार्मिक ग्रन्थो में मनुषिनी शब्द का प्रयोग स्त्रीवेद के उदय की अपेक्षा से किया गया है मूल ग्रन्थों म वेद मे द्रव्यवेद विवक्षित ही नहीं रहा है पर यह ६२वा सूत्र भी भावस्त्री की अपेक्षा से ही निर्मित हुआ है।"

इन वाक्यों के उत्तर मे हम इतना ही शास्त्री जी से पूछते हैं कि 'मूल ग्रन्थो मे सर्वत्र भाववेद ही लिया जाता है द्रव्यवेद नहीं लिया जाता'। यह बात आपने किस आधार से कही है कोई प्रमाण तो देना चाहिये। जो प्रमाण गोम्मटसार के दिये है वे सब द्रव्यस्त्री के ही प्रतिपादक हैं अन्यथा उनका खण्डन करें कि इस हेतु से वे द्रव्यवेद के नहीं किन्तु भाववेद क है। बिना प्रमाण क आपकी बात मान्य नहीं हो सकता है। इसक विपरीत हम इस ट्रैक्ट में पटखण्डागम गोम्मटसार और राजवार्तिक के प्रमाणो से यह बात भली भाति सिद्ध कर चुके हैं कि स्त्रीवेद आदि वेदों का संघटन द्रव्यशरीरों मे ही किया गया है। द्रव्य शरीरो की पर्याप्तता, अपर्याप्तता के आधार पर ही गुणस्थानो का यथासम्भव समन्वय किया गया है। इस ट्रैक्ट के पढ़ने से आप स्वयं उस दृष्टिकोण को समझ लेगे। आपने और दूसरे सभी भावपक्षी विद्वानों ने उस दृष्टिकोण को समझा ही नहीं है या पक्षमोह में पड़कर समझकर भी भ्रम पैदा किया है यह बात आप

लोग ही जानें। मूल ग्रन्थ और टीका ग्रन्थों के प्रमाणों को देखते हुये और उनके विरुद्ध आप लोगों का वक्तव्य पढ़ते हुये हमें इतना कटु सत्य लिखना पड़ा है इसलिये आप लोग हमें क्षमा करें। हमारा इरादा आप पर या दूसरे विद्वानों पर आक्षेप करने का सर्वथा नहीं है किन्तु वस्तुस्थिति बताने का है। ९२-९३ सूत्र और ८९-९०-९१ ये सब सूत्र भाववेद की मुख्यता नहीं रखते हैं किन्तु वे द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की ही मुख्यता रखते हैं और द्रव्य शरीर भी वहां वही लिया जाता है जहां जिस वेद की अपेक्षा से कथन है। ऐसा नहीं है कि कथन तो मानुषी का है और द्रव्य शरीर मनुष्य का लिया जाय। जिस का कथन है उसी की अपर्याप्त पर्याप्त अवस्था और द्रव्य शरीर ग्रहण करना सिद्धांत-विहित है। इसी बात की सिद्धि हम उन सूत्रों की व्याख्या और प्रकरण में अनेक प्रमाणों से स्पष्ट कर चुके हैं।

आगे पं० फूलचन्द जी शास्त्री ने धवल के ८७वें सूत्र का प्रमाण देकर यह बताया है कि वहां पर स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंचों का ग्रहण है। प्रमाण यह है—

'स्त्रीवेदविशिष्टतिरश्चां विशेषप्रतिपादनार्थमाह'

धवला पृष्ठ ३२७

इतना लिखकर वे लिखते हैं कि इसी के समान ९२वां सूत्र स्त्रीवेद वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में है, द्रव्यस्त्रियों के सम्बन्ध में नहीं।

शास्त्री जी से हम यह पूछते हैं कि ऊपर की धवला की पंक्ति

से स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंच और उसी के समान ९२ वां सूत्रगत मानुषी भावस्त्री ही है, द्रव्यस्त्री नहीं है यह बात आप किस आधार से कहते हैं ? स्त्रीवेद विशिष्ट तो हम भी मानते हैं इसमे क्या विरोध है ? परन्तु उन स्त्रीवेद विशिष्ट वालो का द्रव्यवेद स्त्रीवेद नहीं है किन्तु द्रव्यपुरुष शरीर है इसकी सिद्धि तो आप नहीं कर सके है इसके विपरीत हम तो यह सिद्ध कर चुके हैं कि वे स्त्रीवेद-विशिष्ट जीव द्रव्यस्त्री वेद वाले ही हैं । औदारिक मिश्र एवं पर्याप्त अपर्याप्त सम्बन्धित होनेसे वहां उन स्त्रीवेद वालो का द्रव्य पुरुष शरीर नहीं माना जा सकता है ।

वीरसेन स्वामी ने आलापाधिकार में मानुषी के अपर्याप्त अवस्था मे चौथा गुणस्थान नहीं बताया है यह जो आपका लिखना है वह भी हमें मान्य है किन्तु आप उसे भावस्त्री वेद कहते हैं हम द्रव्यस्त्री वेद के ही आधार से उसे बताते है । आपने अपनी बात की सिद्धि में कोई प्रमाण एवं हेतु नहीं दिया है, हम सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं ।

आगे आपने जो गोम्मटसार के आलापाधिकार का 'मूलोघं मणुसतिए'—यह प्रमाण देकर मनुष्यणी के चौथे गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप ही बताया है सो ठीक है हमे इस आगम में कोई विरोध नहीं है परन्तु आप जो उसका अर्थ भावस्त्री करते हैं वह आगम-विरुद्ध पड़ता है उसका अर्थ 'द्रव्यस्त्री' भी है, इसी प्रमाण को सोनी जी ने दिया है उसका उत्तर हम

सहेतुक ऊपर कह चुके हैं अतः फिर दुहराना व्यर्थ है।

आलापाधिकार के सम्बन्ध मे एक बात का हम ध्यान दिला देना चाहते हैं कि चौदहमार्गणा, चौदहगुणस्थान, छह पर्याप्ति दश प्राण, चार संज्ञाये और उपयोग इन बीसों प्ररूपणाओं का यथा सम्भव परस्पर समन्वय ही आलापाधिकार मे किया जाता है। इस लिये वहा पर द्रव्य और भाव रूप से भिन्न २ विवक्षा नहीं की जाती किन्तु यथा सम्भव जहा तक जो द्रव्य और भाव रूप मे बन सकता है वहा तक उन सबको इकट्ठा कर गिनाया जाता है। इसलिये आलापाधिकार में स्त्री वेद के साथ चौदह गुणस्थान भी बताये गये हैं और साथ ही स्त्रीवेद के अपर्याप्त आलाप मे चौथे गुणस्थान का निषेध भी कर दिया, है वह चौथा गुणस्थान स्त्रीवेद के पर्याप्त मे ही सिद्ध हो सकता है। इसी से द्रव्यस्त्री के गुणस्थानो का परिज्ञान हो जाता है। आलापाधिकार पृथक २ विवेचन नहीं करता है उसका नाम ही आलाप है। इसलिये स्त्रीवेद के साथ पर्याप्त अवस्था में भाववेद से सम्भव होने वाले चौदह गुणस्थान भी उसमे बता दिये गये हैं।

और भी विशेष बात यह है कि आलाप तीन कहे गये हे एक सामान्य, दूसरा पर्याप्त, तीसरा अपर्याप्त। उसमे अपर्याप्त आलापके दो भेद किये गये है। बस इन्हीं आलापोके साथ गुणस्थान, मार्गणा, प्राण, संज्ञा, उपयोग आदि घटाये गये हैं। जैसा कि—

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलाआ
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धी णिव्वत्तग चेदि।
(गो० जी० गा० ७०८)

अथ ऊपर किया जा चुका है। इन भेदों के आधार पर आलाप वेदों की अपेक्षा से पृथक २ द्रव्य स्त्री द्रव्य पुरुष में गुणस्थान विधान से नहीं कहे जाते हैं जिससे कि द्रव्य स्त्री के पाच गुणस्थान बताये जाते। जैसा कि भाववेदी पण्डितों का आलापाधिकार के नामोल्लेख से प्रश्न खड़ा किया जाता है। किन्तु पर्याप्त मनुष्य के सम्बन्ध के साथ जहां तक गुणस्थान हो सकते है वे सब गिनाये जाते हैं। इसीलिये स्त्रीवेद के उदय में पर्याप्त मनुष्य के १४ गुणस्थान बताये गये हैं। भाववेद की दृष्टि से स्त्री के भी १४ गुणस्थान गिनाये गये हैं। आलापाधिकार की इस कुञ्जी को — पर्याप्त अपर्याप्त और सामान्य इन तीनों की विवक्षा को—समझ लेने से फिर कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता है। जैसे— मार्गणाओं मे आदि की चार मार्गणायें और योग के अन्तर्गत छह पर्याप्तिया द्रव्य शरीर की ही निरूपक हैं यह मूल बात समझ लेने पर ९२-९३वें सूत्रों का और सयत पद के अभाव का निर्णीत सिद्धात समझ में आ जाता है ठीक उसी प्रकार आलापाधिकार की उपर्युक्त कुञ्जी को ध्यान में लेने से द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान क्यो नहीं कहे गये, भावस्त्री के १४ गुणस्थान क्यों बताये गये ? ये सब प्रश्न फिर नहीं उठते हैं।

'आलापाधिकार द्वारा भाववेद की ही सिद्धि होती है' ऐस

भावपक्षी विद्वान बराबर लिख रहे हैं परन्तु आलापाधिकार से दोनो वेदों का सद्भाव सिद्ध होता है देखिये—

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।

(गो० जी० गाथा ७१५ पृष्ठ ११५४)

इसका अर्थ सस्कृत टीका मे इस प्रकार लिखा है—

"द्रव्यपुरुष--भावस्त्री—रूपप्रमत्तविरते आहारकतदङ्गोपाग-नामोदयः नियमेन नास्ति ।"

तथा च—भावमानुष्या चतुर्दश गुणस्थानानि द्रव्यमानुष्य पञ्चैवेति ज्ञातव्यम् ।

इसका हिन्दी अर्थ पं० टोडरमल जी ने इस प्रकार किया है द्रव्य पुरुष और भावस्त्री ऐसा मनुष्य प्रमत्तविरत गुणस्थान होइ ताके आहारक अर आहारक आगोपांग नामकर्म का उदय नियम करि नाहीं है ।

बहुरि भाव मनुषिणी विषैं चौदह गुणस्थान हैं द्रव्य मनुष्यणी विषे पाच ही गुणस्थान हैं । संस्कृत टीकाकार और पण्डित प्रवर टोडरमल जी को इतने महान ग्रन्थ की टीका बनाने का पूर्णाधिकार सिद्धांत रहस्यज्ञता के नाते प्राप्त था तभी उन्होंने मूल गाथाओ की सस्कृत व हिन्दी व्याख्या की है । इसलिये उन्होने वे टीकायें 'मूल ग्रन्थ को बिना समझे ग्रन्थाशय के विरुद्ध कर डाली हैं' ऐसी बात जो कोई कहते हैं वे हमारी समझ से वस्तु स्वरूप का अपलाप करने का अतिसाहस करते हैं । मूल मे और टीकाओ में कोई भेद नहीं है । जिन्हे भेद प्रतीत होता है वह उनको

सत्नमझधारीका ही दोष है। अस्तु। इस आलापाधिकारसे भी भाव वेद के निरूपण के साथ द्रव्यवेद की सिद्धि भी हो जाती है। यदि द्रव्यवेद की सिद्धि नहीं होती तो स्त्रीवेद के उदय में और पहिले नरक को छोड़कर शेष नरकों के नपुंसकवेद के उदय मे अपर्याप्त आलाप में चौथे गुणस्थान का अभाव और उनके पर्याप्तालाप मे ही सद्भाव कैसे बताया जाता ? अतः आलापाधिकार से सर्वथा भाववेदकी सिद्धि कहना अधिकार विरुद्ध है। यदि 'आलापाधिकार में भाववेद का ही कथन है, द्रव्यवेद का नहीं है' ऐसा माना जाय तो नीचे लिखा दोष आता है— सत्प्ररूपणा —अनुयोग द्वार के वेद आलाप में स्त्री की अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व और सासादन ये दो ही गुणस्थान बताये गये हैं जैसा कि प्रमाण है—

इत्थिवेद अपज्जत्ताण भण्णमाणे अत्थि वे गुणट्ठाणाणि।

(पृष्ठ ३३७ धवल सिद्धात)

यदि आलापाधिकार में द्रव्यवेद का वर्णन नहीं है तो स्त्रीवेद की अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व सासादन और सयोग केवली ऐसे तीन गुणस्थान धवलाकार बताते जैसा कि उन्होने गति-आलाप में बताया है यथा—

तासिंचेव अपज्जत्ताणं भण्णमाणे अत्थि तिण्णि गुणट्ठाणाणि।

(पृष्ठ २५८ धवल सिद्धांत)

ऐसा भेद क्यों ? जबकि सर्वत्र भाववेद का ही कथन है। इस लिये यह समझ लेना चाहिये कि आलापो में पर्याप्त अपर्याप्त के विधान की ही मुख्यता है उनमें सम्भव गुणस्थान द्रव्य और भाव

कर्मकांड की इस नीचे की गाथा से हो जाता है—

अन्तिमतियसंहणणस्सुदओ पुणकम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंहणणं णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥
गो० क० गा० ३२

इस गाथा के अनुसार कर्मभूमि की द्रव्यस्त्रियो के अन्तिम तीन संहननो का ही उदय होता है, आदि के तीन सहनन उनके नहीं होते हैं। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

इस गोम्मटसार के प्रमाण से तीन बातें सिद्ध होती हैं। १-द्रव्यस्त्री मोक्ष नहीं जा सकती। २-गोम्मटसार मे भाववेद का ही कथन है यह बात बाधित हो जाती है। क्योकि इस गाथा मे द्रव्यस्त्री का महिला पद से स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ३ द्रव्यस्त्री की मुक्ति के निषेध कथन की अनादिता सिद्ध होती है। क्योकि श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं कि द्रव्यस्त्री के आदि के तीन संहनन नहीं होते हैं यह बात जिनेन्द्रदेव ने कही है। और मुक्ति की प्राप्ति उत्तम संहनन से ही होती है जैसा कि सूत्र है— उत्तमसंहननस्यैकाग्रचितानिरोधो ध्यानमान्तमुहूर्तात् (तत्वार्थसूत्र) शुक्ल ध्यान उत्तम संहनन वालो को ही होता है और शुक्ल ध्यान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। द्रव्यस्त्रियो के उत्तम संहनन होने का सर्वथा निषेध है। इसीलिये सर्वज्ञ प्रतिपादित परम्परा से आगम में द्रव्य स्त्री की मुक्ति का निषेध है।

इससे एक ही मूल ग्रन्थ गोम्मटसार मे द्रव्यस्त्री के मोक्ष जाने का निषेध स्पष्ट सिद्ध होता है। जैसे तत्वार्थ सूत्र के दशवें अध्याय

मे मोक्ष तत्व का वर्णन है। यहां पर यह प्रश्न करना व्यर्थ होगा कि तत्वार्थसूत्र के छठे अध्याय मे कोई संवर निर्जरा और मोक्ष तत्व का विधान बतावें तो सही? उत्तर मे यही कहना होगा कि तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ म उक्त तीनो का स्वरूप अवश्य है। इसी प्रकार गोम्मटसार एक मूल ग्रन्थ है उसमे द्रव्यस्त्री को मोक्ष का निषेध पाया जाता है। जीवकांड पूर्ण ग्रन्थ नहीं है वह उसका एक भाग है। दोनो मिलकर पूर्ण ग्रन्थ होता है।

आगे शास्त्री जी एवं दूसरे विद्वान (भावपक्षी) कहते हैं 'कि द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान होते हैं यह बात चरणानुयोग का विषय है इसलिये चरणानुयोग शास्त्रो मे उसे समझ लेना चाहिये षट्खण्डागम करणानुयोग शास्त्र है अतः उसमे द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थानोका वर्णन नहीं है'

इन विद्वानो का ऐसा कहना केवल इसलिये है कि ६३ सूत्रमें संयत शब्द जुडा हुआ रहना चाहिये क्योंकि उस के हट जाने से द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान इसी सूत्र से सिद्ध हो जाते हैं। भले ही आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त का कथन और षट्खण्डागम शास्त्र अधूरा एव अनेक सूत्रो मे दोषाधायक समझा जावे, परन्तु उनकी बात रह जानी चाहिये। हम पूछते हैं कि द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान चरणानुयोग शास्त्रों से कैसे जाने जा सकते हैं? उन शास्त्रो मे तो पाक्षिक, नैष्ठिक साधक श्रावकभेद, मुनिधर्मस्वरूप, वस्त्रादित्याग अतीचारादिनिरूपण व्रतो के भेद प्रभेद आदि बातो का ही वर्णन पाया जाता है, 'गृहस्थेष्वनुगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धि-

रत्नाग ।' इस आचार्य समन्तभद्र स्वामीके विधान से सुसिद्ध है। फिर तिर्यंचो के पाच गुणस्थान, नारकियों के चार गुणस्थान देवो के चार गुणस्थान और इनकी अपर्याप्त अवस्था के गुणस्थान तो षटखण्डागम से जाने जांय और वह जानना करणानुयोग का विषय समझा जाय, मनुष्य के चौदह गुणस्थानों का जानना भी इसी षटखण्डागमसे सिद्ध हो जाय, केवल द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान ही इस षटखण्डागम से नहीं जाने जाय, और केवल द्रव्य-स्त्री के गुणस्थान ही चरणानुयोग का विषय बताया जाय, बाकी तीनो गतियो के गुणस्थान करणानुयोग का विषय माना जाय और वह षटखण्डागम से ही जाना जाय ! यह कोई सहेतुक एवं शास्त्र सम्मत बात तो नहीं है, केवल संयत पद को जुड़ा रखने के लिये हेतु शून्य तर्कणा मात्र है। अन्यथा वे विद्वान् प्रकट करें कि केवल द्रव्यस्त्रीके ही गुणस्थान चरणानुयोगका विषय क्यो ? बाकी गतियों के गुणस्थान उसका विषय क्यों नहीं ? केवल द्रव्यस्त्री के गुणस्थानो का करणानुयोग से निषेध कर देने तो ऐसा विदित है कि आप लोग भी द्रव्यस्त्री को मोक्ष का साक्षात पात्र, हीन संहनन मे भी बनाना चाहते हैं। आपका वैसा भाव नहीं होने पर भी आपका यह चरणानुयोग का विधान ही द्रव्य स्त्री के लिये मोक्ष का विधान कर रहा है। यदि आप भावस्त्री के बताये हुये चौदह गुणस्थानों को एक बार चरणानुयोग का विषय कह देवें तो कम से कम यह युक्ति तो आप दे सकेंगे कि चौदह गुणस्थान वास्तव में तो पुरुष के ही होते हैं। स्त्री के तो आज्ञा परक कर्मोदय मात्र

हैं। परन्तु द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान करणानुयोग से विहित हैं। वे उसके वास्तविक वस्तुभूत है। अतः उनका विधान षट्खण्डागम मे अवश्य है।

इस प्रकार श्रीमान प० फूलचन्द जी शास्त्री महोदय के लेखो का भी समाधान हो चुका।

ये सभी भावपक्षी विद्वान ६३वें सूत्र मे संजद पद का रहना आवश्यक बताते है, और उसी के लिये षटखण्डागम सिद्धात के सूत्रो का अर्थ बदल रहे है हम उनसे यह पूछते हैं कि ६३वा सूत्र जब औदारिक काययोग मार्गणा का है तो वह भावस्त्री का प्रतिपादक किस प्रकार हो सकता है ? क्योंकि भावस्त्री तो नोकषाय स्त्रीवेद के उदय में ही हो सकती है, वह बात वेद मार्गणा से सिद्ध होगी। यहा तो औदारिक काययोग मार्गणा का प्रकरण है और उसी के साथ पर्याप्ति नामकर्म के उदय से होने वाली षटपर्याप्तियो की पूर्णता का समन्वय है। इस अवस्था मे मानुषी को विवक्षा मे सिवा द्रव्यवेद के भाववेद की मुख्य विवक्षा आ कैसे सकती है ? यदि यहीं पर भावस्त्री वेद की मुख्य विवक्षा मान ली जाय तो फिर वेदमार्गणा मे वेदानुवाद से क्या कथन होगा ? षटखण्डागम धवल सिद्धात के वेदानुवाद प्रकरण के सूत्रो को देखिये उनमे कहीं भी "पज्जत्ता अपज्जत्ता' ये पद नहीं हैं। इसलिये सूत्र १०१ से लेकर आगे की सब मार्गणाओ का कथन भाववेद की प्रधानता से है। वहा द्रव्य शरीर के ग्रहण का कारण योग और पर्याप्ति का मुख्य कथन नहीं है। परन्तु सूत्र ६३वें मे तो औदारिक काययोग

भावो का विवेचन उन्होने गुणस्थानो द्वारा बताया है और जीव की शरीर आदि बाह्य अवस्था गति इंद्रिय, काययोग और तदन्तर्गत पर्याप्ति आदि इन मार्गणाओ द्वारा बतायी है। और इन्हीं मार्गणा और गुणस्थानो का आधाराधेय सम्बन्ध से परस्पर समन्वय किया है। बस इसी क्रम से सामान्य विशेष रूप से सर्वत्र विवेचन उन परम वीतरागी अंगैकदेश ज्ञानी महर्षियो ने किया है।

अब विचार यह कर लेना चाहिये कि चौदह मार्गणाओ मे द्रव्यवेद कहा पर आया है सो भावपक्षी विद्वान् बतावें ? नामोल्लेख से द्रव्यवेद का वर्णन चौदह मार्गणाओ मे कहीं भी नहीं आया है। यदि यह कहा जाय कि वेद मार्गणा तो आई है उसमे द्रव्यवेद का वर्णन क्यो नहीं किया गया ? तो इसके उत्तर म यह समझ लेना चाहिये कि वेद मार्गणा नोकषाय पुंवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद के उदय से होती है जैसा कि सर्वत्र वर्णन है। उसमे द्रव्यवेद की कोई विवक्षा ही नहीं है। अतः इन ग्रन्थों में भाववेद की विवक्षा और उसका उल्लेख तो मिलता है द्रव्यवेद का उल्लेख और विवक्षा कहने का मार्गणाओ मे कोई विधान नहीं है। अत. क्रमबद्ध विवेचन से बाहर होने से सूत्रों मे उसका उल्लेख आचार्यों ने गुणस्थानो में घटित नहीं किया है। किन्तु द्रव्यवेद से होने वाली व्यवस्था और उस व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले गुणस्थानो को आचार्यों ने छोड़ दिया है सो बात भी नहीं है, द्रव्यवेद का स्वरूप गति मे, इन्द्रियो में. काय मे, योग मे और पर्याप्ति में

आ जाता है।

इसी प्रकार नामकर्म के भेदों में भी द्रव्यवेदों का उल्लेख द्रव्यवेद के नाम से नहीं है परन्तु नामकर्म के आंगोपांग, निर्माण, शरीर इनके विशिष्ट भेदों और उनके उदय में होने वाली नोकार्माण वर्गणाओं से होने वाली शरीर रचना में द्रव्य-वेद गर्भित होते हैं। इसलिये द्रव्यवेदों का स्वतन्त्र उल्लेख मार्गणाओं के क्रम विधान में नहीं आने से नहीं किया है। परन्तु गति, इंद्रिय, काय और योग मार्गणाओं के अन्तर्गत द्रव्यवेद आ जाता है।

इन षटखण्डागम और गोम्मटसार शास्त्रों में जो गुणस्थानों का समन्वय किया गया है वह गति आदि मार्गणाओं के द्वारा जीवों में द्रव्य शरीरों में ही किया गया है। और द्रव्य शरीर द्रव्य स्त्री पुरुषों के रूप में ही पाया जाता है अतः द्रव्यवेद का ग्रहण अवश्यंभावी स्वतः हो जाता है।

यदि द्रव्यवेदों अथवा द्रव्यशरीरों का लक्ष्यभेद विवक्षित नहीं हो तो फिर गुणस्थानों की नियत मर्यादा अमुक गति में, अमुक योग और अमुक पर्याप्ति अपर्याप्ति में इतने गुणस्थान होते हैं अथवा अमुक गुणस्थान अमुक गति में, अमुक योग में, अमुक अवस्था (पर्याप्त अपर्याप्त) में नहीं होते हैं यह बात कैसे सिद्ध हो सकती है? गुणस्थानों का समन्वय द्रव्य शरीरों को लेकर ही गत्यादि के आधार से कहा गया है इसलिये द्रव्यवेदों का ग्रहण बिना उनके उल्लेख किये गति और शरीर सम्बन्ध से हो ही

नपुंसकवेद रूप चारित्र मोहनीय के भेद स्वरूप नोकषाय कर्म के उदय में जो पुरुष स्त्री नपुंसकरूप आत्मा के भाव होते हैं उन्हीं को पुंवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद कहा जाता है। यह तो भाववेद का कथन है। द्रव्यवेद का इस प्रकार है—निर्माण नामकर्म के उदय युक्त आगोपांग नामकर्म विशेष के उदय से पुद्गल पर्याय विशेष जो द्रव्य शरीर है वही पुरुष स्त्री नपुंसक द्रव्यवेद रूप कहलाता है।

यह तीनो का स्वरूप द्रव्य भाववेद रूप से कहा गया है प्रत्येक का इस प्रकार है—

पुंवेदोदयेन स्त्रियामभिलाषरूपमैथुनसञ्ज्ञाक्रांतो जीवः भाव-पुरुषो भवति। पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदय—युक्तांगोपांग-नामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादि-लिंगांकित-शरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरम-समयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो भवति।

अर्थात्—पुरुष वेद कर्म के उदयसे निर्माण नाम कर्म के उदय से युक्त आंगोपांग नाम कर्मोदय के वशसे जो जीव का मूंछ दाढ़ी लिंगादिक चिन्ह सहित द्रव्यशरीर है वही द्रव्यपुरुष कहा जाता है और वह द्रव्यपुरुष जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त तक रहता है।

इसी प्रकार भावस्त्री द्रव्यस्त्री, भावनपुंसक द्रव्यनपुंसकके भिन्न भिन्न लक्षण गोम्मटसारकार ने और टीकाकार ने इसी प्रकरण मे बताये हैं परन्तु लेख बढ़नेके भय से एक पुरुषवेद का ही भाव और द्रव्यवेद हमने यहां उद्धृत किया है।

यह गोम्मटसार मूल गाथा द्रव्यवेद का विधान करती है।

अन्तिमतिय संहणणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।

(गो० क० गा० ३२ पृष्ठ २५ टी०)

कर्मभूमि की महिलाओं के (द्रव्यस्त्रियों के) अन्त के तीन संहनन ही होते हैं। यह भी द्रव्यस्त्री का स्पष्ट कथन है। मूल ग्रन्थमें है। और भी देखिये—

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एक समयम्मि।

आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सं॥

(गो० जी० गा० २७० पृष्ठ ५८६)

एक समय में उत्कृष्ट रूप मे ५४ आहारक काय योग वाले हो सकते हैं तथा आहारक मिश्रकाय वालों की सख्या एक समय में २७ होती है।

यह कथन छठे गुणस्थानवर्ती आहारक काययोग धारण करने वाले द्रव्यशरीर धारक मुनियो का है। इस गाथामें भाव वेदकी गन्धभी नहीं केवल द्रव्यशरीर का ही कथन है। और भी-

णेरयिया खलु संढा णरतिरिये तिण्णि होंति संमुच्छा।

संढा सुरभोगभुमा पुरुसिच्छी वेदगा चेव॥

(गो० जी० गा० ९३ पृष्ठ २१४ टी०)

नारकी सब नपुंसक ही होते हैं। मनुष्य तिर्यंचों में तीनों वेद होते हैं। सम्मूर्छन जीव नपुंसक ही होते हैं। देव और भोगभूमि के जीव स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी ही होते हैं। यहां पर द्रव्यवेद और भाववेद दोनों लिये गये हैं। टोका में स्पष्ट लिखा

है कि 'द्रव्यतो भावतश्च'। अर्थात् कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यचोको छोड कर बाकी के जीवोके द्रव्यवेद भाववेद एक ही है। द्रव्यवेद के लिये तो टीका प्रमाण है परन्तु केवल भाववेद के लिये भाव-वादियो के पास क्या प्रमाण है ? और भी—

साहिय सहस्समेकं वारं कोसूणमेक मेक्कंच।
जोयण सहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे ॥
(गो०जी० गा० ६४ पृ २१७ टी०)

कमल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय महामत्स्य इन जीवो के शरीर की अवगाहना से कुछ अधिक एक हजार योजन की अवगाहना कमल की, द्वीन्द्रियशख की बारह योजन, चींटियो की त्रीन्द्रियो मे तीन कोस की, चौइन्द्रिय मे भ्रमर की एक योजन पञ्चेन्द्रियो मे महामत्स्य की अवगाहना एक हजार योजन लम्बी है। इसी प्रकार आगे अन्य जीवो के शरीर की अवगाहना बताई गई है। यह सब द्रव्य शरीर का ही निरूपण है। भाव का कुछ नहीं है। और भी—

पोतजरायुजअण्डजजीवाण गब्भदेवणिरयाणम्।
उववाद सेसाणं समुच्छणयं तु णिदिट्ठम् ॥
(गो० जी० गा० ८४)

इस गाथामें स्वेदज, जरायुज अण्डज, देवनारकी, और बाकी समस्त ससारी जीवो का गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छन जन्म बताया गया है। यह सब द्रव्यशरीर का ही वर्णन है। भाव का नहीं है। इसी प्रकार—

गुणस्थान जीवोंके इस गाथा में किस योनि में कौन जीव पैदा होते हैं यह बताया गया है ये सब कथन द्रव्यवेद की मुख्यता रखता है।

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणम्।

(गो० जीव० गा० १५९)

इस गाथा में यह बताया गया है कि जितनी पर्याप्त मनुष्यों की राशि है उसमें तीन चौथाई द्रव्यस्त्रियां हैं। टीकाकार ने मानुषी का अर्थ द्रव्यस्त्री ही किया है। लिखा है 'मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणामिति।' इससे स्पष्ट है कि गोम्मटसार मूल में द्रव्यवेद का कथन भी है।

इसी प्रकार प्रत्येक मार्गणाओं में द्रव्य शरीर धारी जीवों की संख्या बताई गई है। इन सब प्रकरणों के कथन से यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है। कि गोम्मटसार तथा षटखण्डागम में द्रव्य भाव दोनों का ही कथन है। केवल भाववेद का ही कथन बताना ग्रन्थ के एक भाग का ही कहा जायगा। अथवा वह कथन ग्रन्थ विरुद्ध ठहरेगा। क्योंकि उक्त दोनों में द्रव्यवेद की और भाववेद की चर्चा व विधान है।

गोम्मटसार इसी सिद्धांत शास्त्र का संक्षिप्त सार है।

गोम्मटसार ग्रन्थ की भूमिका में यह बात लिखी हुई है कि जब चामुण्डराय आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती के चरण निकट पहुंचे थे तब वे आचार्य महाराज सिद्धांत शास्त्र का स्वाध्याय कर रहे थे, उन्होंने चामुण्डराय को देखते ही वह सिद्धांत शास्त्र

बन्द कर लिया जब चामुण्डराय ने पूछा कि महाराज ऐसा क्यों किया मैं भी तो इस शास्त्र के रहस्य को जानना चाहता हूं तब आचार्य महाराज ने कहा कि इस सिद्धांत शास्त्र को वीतराग महर्षि ही पढ़ सकते हैं गृहस्थो को इसक पढ़ने का अधिकार नहीं है। जब चामुण्डराय की अभिलाषा उसके विषय को जानने की हुई तो सिद्धात चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने उन सिद्धात शास्त्र का संक्षिप्त सार लेकर गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की। 'गोम्मट' चामुण्डराय का अपर नाम है। उस गोम्मट के लिये जो सार सो गोम्मटसार ऐसा यथानुगुण नाम भी उन्होने रख दिया। इसलिये जब गोम्मटसार ग्रन्थ उसी षटखण्डागम सिद्धात का सार है तब गोम्मटसार मे तो सर्वत्र द्रव्यवेद एवं द्रव्य शरीरों का वर्णन पाया जाय परन्तु जिस सिद्धात शास्त्र से यह सार लिया गया है उसमे द्रव्यवेद का कहीं भी कथन नहीं बताया जाय और वह ग्रन्थातरो से जाना जाय यह बात किसी बुद्धिमान की समझ मे आने योग्य नहीं है।

—टीकाकार और टीकाग्रन्थों पर असह्य आरोप—

इन भावपक्षी विद्वानो के लेखो मे यह बात भी हमारे देखने मे आई है, कि मूल ग्रन्थों मे द्रव्यवेद और भाववेद ये दो भेद नहीं मिलते हैं, जब से स्त्री मुक्ति का विधान द्रव्यस्त्री परक किया जाने लगा है तब से टीका ग्रन्थों मे या उत्तर कालवर्ती ग्रन्थों मे द्रव्यवेदों का भी उल्लेख किया जाने लगा है। यह बात पं० फूलचन्द जी सिद्धात शास्त्री महोदय ने लिखी है। सोनी जी

महोदय तो यहां तक लिखते हैं कि "द्रव्यस्त्रिया अधिक हैं उनकी मुख्यता से गोम्मटसार के टीकाकारों ने 'द्रव्यस्त्रीणां वा द्रव्य—मनुष्यस्त्रीणां' ऐसा अर्थ लिख दिया है एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा—

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।

के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है और इस वजह से नहीं धवला का प्रकरण द्रव्य प्रकरण है।"

आगे सोनी जी का लिखना कितना अधिक और ग्रन्थ एवं टीका के विरुद्ध है उसे पढ़ लीजिये—

"गोम्मटसार मूल में भी मनुष्यणी पद है, सूत्र में भी मनुष्यिणी पद है, सूत्र के टीकाकार वीरसेन स्वामी मनुष्यणी को मानुषिणी ही लिखते हैं, द्रव्यस्त्री या द्रव्यमनुष्यणी नहीं लिखते, किन्तु गोम्मटसार के टीकाकार मनुष्यिणी को द्रव्यस्त्री द्रव्यमनुषिणी ऐसा लिखते हैं। यह न तो विरोध है और न ही इस एक शब्द के पीछे धवला का प्रकरण ही द्रव्य प्रकरण है।"

सोनी जी ने इन पंक्तियों को लिखकर मूल ग्रन्थों में और टीकाकारों में परस्पर विरोध दिखलाया है, इतना ही नहीं उन्होंने गोम्मटसार के टीकाकार को मूल ग्रन्थ से विरुद्ध टीका करने वाले ठहरा दिया है यह टीकाकार पर बहुत भद्दा, एवं असह्य आक्षेप है। सोनी जी विद्वान हैं उन्हें तो बहुत समझ कर मर्यादित बात कहना चाहिये। सोनी जी यहां तक लिखते हैं कि "टीकाकार के द्रव्यस्त्री इस एक शब्द के पीछे धवला का प्रकरण द्रव्य प्रकरण

नहीं हो सकता है !" उन्हें समझना चाहिये कि यह सिद्धात है एक बात में ही तो उल्टा सीधा हो जाता है। द्रव्य स्त्री इस एक बात में ही तो द्रव्यस्त्रियो की साक्षात् मोक्ष प्राप्ति रुक जाती है। इस एक बात की परवा नहीं की जाय तो वे भी उसी पर्याय से मोक्ष जा सकती है? आप भी तो 'सञ्जद' इस एक बात को ही रखना चाहते है। उस एक बात से ही तो द्रव्य स्त्री को मोक्ष सिद्ध हो सकती है। एक बात तो लम्बी है एक 'न' और एक अनुस्वार मे भी उल्टा हो जाता है। फिर आप तो यहा तक भी लिखते हैं कि-

"गोम्मटसार का वेद मार्गणा नाम का प्रकरण भी द्रव्य—प्रकरण नहीं है वह भी भाव प्रकरण है गोम्मटसार मे 'णामोदयेण दव्वे' इन सात अक्षरो के सिवा वेदो का सामान्य और विशेष स्वरूप भाववेदो से सम्बन्धित है" इन 'णामोदयेण दव्वे' सात अक्षरो का आपकी समझ में कोई मूल्य ही नहीं मालूम होता है। ये सात अक्षर मूल ग्रन्थ के हैं, टीका के ही नहीं है फिर भी आप आख मीच कर बडे साहस से कह रहे है कि गोम्मटसार सारा भाववेदो से ही सम्बन्धित है? आपकी इस बात पर बहुत भारी आश्चर्य होता है मूल ग्रन्थ मे आये हुये पदो को देखते हुये भी उन पर कोई विचार नहीं करना प्रत्युत उनसे विपरीत केवल भाववेद की ही एक बात समूचे ग्रन्थ मे बताना और सात अक्षर मात्र कहकर उनके विधान का निषेध कर देना, हमारी समझ से ऐसी बात सोनी जी को शोभा नहीं देती है। ऐसा कहने से समस्त ग्रन्थ सरणि की अप्रमाणता एवं अमान्यता

उन्होंने 'द्रव्यस्त्रीणा' आदि रूप में लिखा है तो गोम्मटसार के टीकाकार का कथन मूल गोम्मटसार से भी विरुद्ध है और धवला से भी विरुद्ध है। इस पक्षपात की भी कोई हद है? भाव प्रकरण मानने पर दोनों में और मूल में भी कोई विरोध नहीं किन्तु द्रव्य प्रकरण मानने पर पूरा विरोध। विचित्र ही पूर्वापर विरुद्ध साधन एवं समर्थन है।

परन्तु गोम्मटसार मूल में भी और उसकी टीका में भी द्रव्य-निरूपण एवं द्रव्यस्त्री आदि का विधान स्पष्ट लिखा है जैसा कि हम ऊपर उद्धरण देकर खुलासा कर चुके हैं। ऐसी अवस्था में सोनी जी के लेखानुसार मूल में भी षट्खण्डागम से विरोध ठहरेगा। और टीकाकार का भी धवला से विरोध ठहरेगा। परन्तु षट्खण्डागम गोम्मटसार और धवला टीका तथा गोम्मटसार टीका, इन सबों में कहीं कोई विरोध नहीं है, प्रकरणों में यथास्थान और यथासम्भव द्रव्यवेद और भाववेद का निरूपण भी सबों में है। धवलाकार ने यदि मानुषी का अर्थ मानुषी ही लिखा है और गोम्मटसार के टीकाकार ने मानुषी का अर्थ द्रव्यस्त्री भी लिखा है तो दोनों में कोई विरोध नहीं है। यदि धवलाकार उस प्रकरण में भाव मानुषी लिख देते या द्रव्य मानुषी का निषेध कर देते तब तो वास्तव में विरोध ठहरता। सो कहीं नहीं है। जहां जैसा प्रकरण है वहां वैसा द्रव्य या भाव लिखा गया है इसी प्रकार गोम्मटसार मूल में जहां द्रव्यस्त्री शब्द नहीं भी लिखा है और टीकाकार ने लिख दिया है तो भी प्रकरण गत वही अर्थ ठीक है। टीकाकार

ने मूल का स्पष्टीकरण ही किया है। यही समझना चाहिये। अपनी बात की सिद्धि के लिये महान शास्त्रों में और उनके रचयिता सिद्धांत रहस्यज्ञ साधिकार टीकाकारों में विरोध बताना बहुत बड़ी भूल और सर्वथा अनुचित है।

आगे सोनी जी द्रव्यस्त्रियों की संख्या को स्वयं स्वीकार भी करते हैं--

"तथा द्रव्यस्त्रियां अधिक हैं और भावस्त्रियां बहुत ही थोड़ी हैं इस बात को (पाहूण समा कहिं विसमा) यह गोम्मटसार की गाथा कहती है, इसलिये अधिक की मुख्यता को लेकर गोम्मट—सार के टीकाकारों ने द्रव्यस्त्रीणां या द्रव्यमनुष्यस्त्रीणां ऐसा अर्थ लिख दिया है, एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है।"

इन पंक्तियों द्वारा मानुषियों की संख्या द्रव्यस्त्रियों की संख्या है ऐसा सोनी जी ने स्वीकार भी किया है और उसके लिये गोम्मटसार मूल गाथा का (पाहूण समा पहि विसमा) यह हेतु भी दिया है और उसी के मूल के अनुसार टीकाकार ने द्रव्यस्त्री द्रव्यमनुष्यस्त्री लिखा है यह भी ठीक बताया है। इतनी सप्रमाण और सहेतुक द्रव्यस्त्री की मान्यता को प्रगट करते हुये भी सोनी जी स्वयं यह भी लिखते हैं कि "एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है" हमको उनके इस गहरे पक्षपात पूर्ण परस्पर विरुद्ध कथन पर आश्चर्य होता है। क्यों पं० जी, जब गाथा बता रही है और उसी के अनुसार

टीकाकार ने द्रव्यस्त्री या द्रव्यमनुष्यणी लिखा है तो फिर भी इसके होते हुये आप उस प्रकरण को द्रव्य प्रकरण क्यो नहीं मानोगे ? क्या यह कोई बच्चो की बात चीत है कि 'हम तो नहीं मानेंगे' यह शास्त्रो के प्रमाण को वात है। इसी पर द्रव्यस्त्री को मोक्ष का निषेध एव वस्तु निर्णय होता है। इसी की मान्यता मे सम्यग्दर्शन की आत्मस्थ गवेषणा की जाती है। इसी की मान्यता अमान्यता मे मुक्ति व संसार कारणो का आस्रव होता है।

—टीकाकारों की प्रामाणिकता और महत्ता—

जिन टीकाकारो ने षटखण्डागम सिद्धात शास्त्र, गोम्मटसार जीवकाड तथा गोम्मटसार कर्मकाड जैसे सिद्धान्त रहस्य से परिपूर्ण जीवस्थान, कर्मप्रकृति प्ररूपक महान् गम्भीर एव अत्यंत गहन ग्रन्थो की साधिकार टीकाये की है उनकी प्रामाणिकता और महत्ता कितनी और कैसी है इसी बात का दिग्दर्शन करा देना भी आवश्यक हो गया है। भगवद्वीरसेन स्वामी ने षटखण्डागम सूत्रो की टीका की है उनकी प्रामाणिकता और महत्ता अगाध है, उनके विषय मे सोनी जी का कोई भी आक्षेप नहीं है। परन्तु गोम्मटसार के टीकाकारों पर अवश्य आक्षेप है, इसलिये उनके विषय मे थोड़ा सा दिग्दर्शन यहा कराया जाता है। गोम्मटसार के चार टीकाकार है— पहले टीकाकार श्रीमत् चामुण्डराय जी, दूसरे केशववर्णी, तीसरे आचार्य अभयचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती, और चौथे पण्डितप्रवर टोडरमल जी।

चामुण्डराय जी आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती के

साक्षात् पट्टशिष्य थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने जब गोम्मटसार की रचना की थी तभी उनके सामने ही उनके शिष्य चामुंडराय ने उस गोम्मटसार की टीका कर्णाटक वृत्ति रची थी, यह टीका उन्होंने अपने गुरु मूल ग्रन्थ गोम्मटसार के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती को दिखाकर उनसे पास भी करा ली होगी यह निश्चित है। तभी तो गोम्मटसार की रचना क अंत मे आचाय नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती ने यह गाथा लिखी है।

गोमट्टसुत्तलिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडो ॥
(गो० क० गा० ९७२)

अर्थ—गोम्मटसार ग्रन्थ के गाथा सूत्र लिखने के समय जिस गोम्मटराय ने (चामुण्डराय ने) देशी भाषा कर्णाटक वृत्ति बनाई है वह वीर मार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध चामुण्डराय चिरकाल तक जयवंत रहो।

यह ९७२वीं गाथा गोम्मटसार की सबसे आखीर की गाथा है इसमे चामुंडराय की टीका का उल्लेख कर आचाय नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती ने उन्हें वीर मार्तण्ड नाम से पुकारकर चिरकाल जीने का भावपूर्ण आशीर्वाद दिया है। इससे पहली पाच गाथाओं में भी आचार्य महाराज ने चामुण्डराय के महान् गुणो की और उनके समुद्र तुल्य ज्ञान की भूरि २ प्रशंसा की है। इससे यह बात सहज हर एक की समझ में आने योग्य है कि आचाय

नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने चामुण्डराय की समस्त टीका को अवश्य ध्यान से देखा होगा। और यह भी परिचय मिलता है कि जितना मूल ग्रन्थ आचार्य महाराज बनाते होंगे उतनी ही उसकी टीका चामुण्डराय बना देते होंगे। और वह प्रतिदिन आचार्य महाराज की दृष्टि में आती होगी। इसका प्रमाण यही है कि आचार्य महाराज ने उस कर्णाटक वृत्ति टीका को देखकर ही गोम्मटसार की समाप्ति मे चामुण्डराय की उस टीका का उल्लेख कर आशीर्वाद दिया है इससे बहुत स्पष्ट हो जाता है कि मूल ग्रन्थ का जो अभिप्राय है उसी को चामुण्डराय ने खुलासा कहा है। यदि उनकी टीका मूल ग्रन्थ से विरुद्ध होती और आचार्य महाराज का अभिप्राय मानुषी पद का अर्थ भावकी होता और चामुंडराय जी, टीका मे द्रव्यकी करते तो आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती उसे अवश्य सुधरवा देते। इतनी ही नहीं किन्तु आचार्य महाराज से निर्णय करके ही उन्हो ने हर एक बात लिखी होगी। क्योंकि चामुंडराय जी कोई स्वतन्त्र टीकाकार नहीं थे किन्तु आ० महाराज के शिष्य थे अतः जो मूलग्रन्थ है टीका उसी रूप मे टीका है। तथा उस टीका से केशववर्णी ने संस्कृत टीका बनाई है। जब चामुण्डराय की कर्णाटकीवृत्ति का ही संस्कृत टीका (केशववर्णीकृत) अनुवाद है तब उसकी भी वही प्रामाणिकता है जो चामुंडराय की टीका की है। तीसरी संस्कृत टीका मन्द प्रबोधिनी नाम की है वह श्रीमत् अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती की बनाई हुई है। इस टीका के रचयिता श्री० अभयचन्द्र जी सिद्धांत

चक्रवर्ती थे और उनकी टीका भी केशववर्णी की टीका से मिलती है। टीकाकारो के इस परिचय से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूल ग्रन्थ और उसकी टीका मे कोई अन्तर नहीं है, चौथी टीका पण्डित प्रवर टोडरमल जी की हिन्दी अनुवाद रूप है। उन्होंने संस्कृत टीका का ही हिन्दी अनुवाद किया है इसलिये उसमे भ कोई विरोध सम्भव नही है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि ये सभी टीकाकार महा विद्वान थे। सिद्धात शास्त्रो के पूर्ण पारङ्गत थे। और जिन शास्त्रो की उन्होंने टीका रची है उनके अन्तस्तत्व को मनन कर चुके थे तभी उनकी टीका करने के वे अधिकारी बने थे। जहा मानुषी शब्द का अर्थ भाववेद है वहा भावरूप और जहा उसका अर्थ द्रव्यवेद है वहा द्रव्यरूपी अर्थ उन्होंने किया है। इसलिये मूल ग्रन्थ मे केवल मानुषी पद होने पर भी स्पष्टता के लिये टीकाकारों ने द्रव्यस्त्री अर्थ समझ कर ही किया है। वह टीकाकारों का किया हुआ नहीं समझकर मूल ग्रन्थ का ही समझना चाहिये। 'वक्तुः प्रमाण्याद्वचनप्रमाणम्' इस नीति पर सोनी जी ध्यान देंगे ऐसी आशा है। टीकाकारो की निजी कल्पना कहने वाले एवं उनकी भूल बताने वाले दूसरे विद्वान भी इस विवेचन पर लक्ष्य देंगे। "टीकाकारो ने ऐसा लिखा है मूलमे यह बात नहीं है" इस प्रकार की बातें हमें सहन नहीं हुई है उस प्रकार के कथन से टीका ग्रन्थो मे श्रद्धा की कमी एवं उलटी समझ हो सकती है इसी लिये इतना लिखना हमने आवश्यक समझा।

सोनी जी की पूर्वापर विरुद्ध बातें

९३वें सूत्रमें संजदपदका अभाव सोनीजी स्वयं बताते हैं

पं० पन्नालाल जी सोनी आज अपने लम्बे २ लेखों में समूचे षट्खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र में केवल भाववेद का ही कथन बता रहे हैं। द्रव्यवेद का इसमें कहींभी वर्णन नहीं है ऐसा वे बार बार लिख रहे हैं।

इसी प्रकार वे आलापाधिकार मे भी केवल भाववेद का ही कथन बताते हैं।

आज वे धवला सिद्धान्त के ९३वे सूत्र को भाववेद विधायक बताते हुये उसमें "संयत" शब्द का होना आवश्यक बता रहे हैं।

परन्तु आज से केवल कुछ मास पहिले उपर्युक्त बातों के सर्वथा विपरीत उन बातों की सप्रमाण पुष्टि वे स्वयं कर चुके हैं जिनका विधान हम अपने इस लेख में कर रहे हैं। आश्चर्य इस बात का है कि जिन प्रमाणों से वे आज भाववेद की पुष्टि कर रहे हैं, उन्हीं प्रमाणों से पहले वे द्रव्यवेद की पुष्टि कर चुके हैं। ऐसी दशा में हम नहीं समझे कि आगम ही बदल गया है या सोनी जी को मतिभ्रम हो चुका है। अन्यथा उनके लेखों में पूर्वापर विरोध एवं स्ववचन बाधितपना किस प्रकार आता? जो भी हो।

यहां पर सोनी जी के उन उद्धरणों को हम देते हैं जिन्हें उन्होंने दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण पुस्तक के द्वितीय भाग में लिखा है।

सोनी जी ने धवल सिद्धान्त के ९२ और ९३ वें सूत्रो को लिखकर उनका अर्थ भी लिखा है, उस अर्थ के नीचे वे लिखते हैं कि—

"अब विचारणीय बात यहां पर यह है कि वे मनुषिणियां द्रव्य मनुषिणियां हैं या भाव मनुषिणियां। भावमनुषिणियां तो हैं नहीं। क्योंकि भाव तो वेदों की अपेक्षा से हैं, उनका यहां पर्याप्तता अपर्याप्तता मे कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि भाव-वेदों में पर्याप्तता अपर्याप्तता ये दो भेद हैं नहीं। जिस तरह कि क्रोधादि कषायो में पर्याप्तता अपर्याप्तता ये दो भेद नहीं हैं। इस लिये स्पष्ट होता है कि ये द्रव्य मनुषिणियां हैं। आदि के दो गुणस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त आगे के तीन गुणस्थानो में पर्याप्तक, इस तरह पांच गुणस्थान कहे गये हैं। इससे भी स्पष्ट होता है कि ये द्रव्यमनुषिणियां हैं। भावमनुषिणियां होतीं तो उनके नौ या चौदह गुणस्थान कहे जाते। किन्तु गुणस्थान पांच ही कहे गये हैं।

(दि० जैन सिद्धान्त दर्पण द्वितीय भाग पृष्ठ १५०)

पाठकगण सोनीजी के ९२ और ९३ सूत्रों के अर्थ को ध्यान से पढ़ लेवें। उन्होंने सहेतुक इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि षटखण्डागम के सूत्र ९२ और ९३ वें जो मानुषियां हैं वे द्रव्य-स्त्रियां ही हैं। और उनके पांच ही गुणस्थान होते हैं। आज वे उन्हीं प्रमाणोंसे ९२-९३ सूत्रोंको भाववेद का विधायक बताते हुये उन सूत्रो में कही गई मानुषिणियों को भाव—मनुषिणियां

आगे और भी पढ़िये—

"इसके ऊपर के (यहां पर ६३वां सूत्र सोनी जी ने लिखा है) नं० ६२वें सूत्र में मणुसिणीसु शब्द है, उसकी अनुवृत्ति नं० ६३ सूत्र में आती है, इस मनुषिणी शब्द को यदि आप द्रव्यस्त्री मानें तो बड़ी खुशी की बात होगी। क्योंकि यहां मानुषिणी के पांच ही गुणस्थान कहे हैं। पांच गुणस्थान वाली मानुषिणी द्रव्यस्त्री होती है।"

(दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण पृ० १५३)

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि सोनी जी ६३वें सूत्रमें संजद पद नहीं बताते हैं और उसको द्रव्यस्त्री का ही प्रतिपादक बताते हैं और उस सूत्र को पांच गुणस्थानों का विधायक ही बताते हैं। आज वे ६३वें सूत्रको भावस्त्री का कथन करने वाला बता रहे हैं। इस पूर्वापर विरुद्ध कथन का और इस प्रकार की समझदारी का भी कुछ ठिकाना है?

पाठकगण सोच लें कि प्रोफेसर हीरालालजी को ही मतिभ्रम नहीं है किन्तु सोनी जी जैसे विद्वानों को भी मतिभ्रम होगया है। अन्यथा पूर्वापर विरुद्ध बातें आगम के विषय में क्यों?

आगे सोनीजी संख्याको भी द्रव्यस्त्रियों की संख्या बताते हैं—

"पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीणपरिमाणं"

इस गाथा को देते हुए सोनी जी लिखते हैं—

"यह नं० १५८ की गाथा का पूर्वांश है इसमें आये हुये माणुसीण शब्द का अर्थ केशववर्णी की कन्नड़ टीका के अनुसार

आगे सोनी जी आलापाधिकार की-मूलोघं मणुसतिये इस गाथा को लिख कर कहते हैं--

"योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव" योनिमत असंयत में एक पर्याप्तालाप ही होता है। यहां योनिमत का अर्थ द्रव्यमानुषी और भावमानुषी दोनों हैं।"

(दि० जैन सि० दर्पण द्वि० भाग पृ० १५६)

इस लेखमें सोनी जी आलापाधिकार को द्रव्यकी और भाव की दोनों का निरूपक स्वीकार करते हैं। और यही बात हमने लिखी है कि आलापाधिकार में यथा सम्भव द्रव्यवेद भाववेद दोनों लिये जाते हैं। परन्तु आज वे पक्ष-मोह में इतने गहरे सन गये हैं कि आलापाधिकार को केवल भाव का ही निरूपक बता रहे हैं। आगे और पढ़िये—

सोनी जी षटखण्डागम के "मणुस्सा तिवेदा" इस १०८ वें सूत्र को लिख कर लिखते हैं कि—

"इस सूत्र में द्रव्यमनुष्य तीन वेद वाले कहे गये हैं"

"सूत्र नं० १०८ में मणुस्सा पद द्रव्यमनुष्यका सूचक है"

(पृ० नं० १४६)

इस लेख मे सोनी जी को षटखण्डागम के मूल सूत्रो में भी द्रव्यवेद के दर्शन हो रहे हैं परन्तु आज के नेत्रों में उन्हें समूचे षटखण्डागम मे केवल भाववेद ही दीख रहा है पहले लेख मे वे यह खुलासा लिख रहे हैं कि—

"मणुस्सा का अर्थ भाव मनुष्य नहीं है" (पृष्ठ १४६)

मुक्ति आदि की बात प्रगट की थी, दिगम्बर धर्म के उस सर्वथा विपरीत बात का समाज के अनेक विद्वानो ने अपने लेखो वा ट्रैक्टो द्वारा खण्डन कर दिया है। विषय समाप्त हो चुका। प्रोफेसर साहब का अब भी मत कुछ भी हो परन्तु वे भी इन खण्डनों को देख कर चुप बैठ गये। परन्तु अब फिर नये रूप से वही द्रव्यस्त्री मुक्ति की सिद्धान्त शास्त्रो से सिद्धि की विपरीत बात पं० खूबचन्द जी द्वारा धवल सिद्धान्त में सञ्जद पद जोड़कर तांबे में खुदवा देने से ही खड़ी हुई है, इस सम्बन्ध मे आज प्रत्येक समाचार पत्र इसी सवाल की चर्चा से भरा रहता है। बम्बई में विद्वानो मे परस्पर विचार विनिमय (लिखित शास्त्रार्थ) भी हो चुके हैं। आन्दोलन पर्याप्त बढ चुका है। परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्ति सागरजी महाराज को इस विषय की चिन्ता खडी हो गई है। सञ्जद' शब्द केवल तीन अक्षरो का है, उसके सूत्र मे रखने या नहीं रखने में उतना ही प्रभाव पडेगा जितना मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके रहने नहीं रहने में पड़ता है। ये दोनो भी केवल तीन २ अक्षरो के ही हैं। संयत शब्द के जोड़ने पर द्रव्यस्त्री मुक्ति, की सिद्धि श्वेताम्बर मान्यता सिद्ध होती है, नहीं रखनेसे वह नहीं होती है। इसलिये उसके रखने का विरोध किया जा रहा है। सिद्धान्त-विघात नहीं हो यही विरोध का कारण हैं अन्यथा सिद्धान्त शास्त्रो की स्थायी रक्षा के लिये जो ताम्रपत्र पर लिखे जाने की योजना है वह सब व्यर्थ ही नहीं किन्तु विपरीत साधक होगी।

विचार यहा इतना है कि संजद शब्द जो अब जोड़ा जा चुका है उसे हटा दिया जाय। उस पन्ने को गलवा कर दूसरा ताम्रपत्र खुदवाया जाय। परम पूज्य आचार्य महाराज के समक्ष जब पं० खूबचन्द जी से यह चर्चा हुई तब आचार्य महाराज को उन्होंने यह उत्तर दिया कि "यदि तावे की प्रति से संजद शब्द निकाला जायगा तो मैं उसी दिन से उसके संशोधन का काम करना छोड़ दूगा।" आचार्य महाराज को इस उत्तर से खेद भी हुआ और दो प्रकार की चिंता हो गई। यदि सञ्जद पद वाले पत्र को प्रति से हटा कर नष्ट कराया जाता है तो सशोधन का चालू काम रुकता है, और यदि सञ्जद शब्द जुडा रहता है तो मिथ्यात्व रूप द्रव्यस्त्री की मुक्ति की सिद्धि सिद्धातशास्त्रों से सिद्ध होती है। महाराज यह भी कह चुके हैं कि विद्वान लोग अपनी जिद नहीं छोड़ते हैं। प० खूबचन्द जी जब आचार्य महाराज को उपर्युक्त उत्तर दे चुके हैं तब वे हमारी बात पर ध्यान देंगे यह कठिन है। फिर भी कर्तव्य के नाते हम उनसे दो शब्द कह देना चाहते हैं चाहे वे मानें या नहीं—

आप आगम के विषय मे भी इतना हठ करते हैं कि यदि सञ्जद पद वाला पत्र हटाया गया तो मै काम छोड़ दूगा सो ऐसा हठ क्यो? आपके पास यदि ऐसे प्रबल प्रबल प्रमाण हैं जिनसे सञ्जद शब्द का रखना आवश्यक है तो उन्हें आज तक आपने क्यों प्रसिद्ध नहीं किया? दो वर्ष से यह चर्चा चल रही है आपने सञ्जद शब्द जोड़ा है, अत. मूल उत्तरदायित्व आप पर ही है।

आपको अपना सप्रमाण वक्तव्य प्रसिद्ध करना परमावश्यक था, परन्तु दूसरे विद्वान तो कुछ लिखते भी है, आप सर्वथा चुप है और काम छोड़ देने की धमकी दे रहे हैं। ऐसी धमकी तो आगम के विषय में कोई निस्पृह श्रम करने वाला भी नहीं दे सकता है। आपका कर्तव्य तो यही होना चाहिये कि आप स्वयं महाराज की सेवा में यह प्रार्थना करे कि सञ्जद शब्द पर जो विवाद समाज मे खडा हो गया है उसे आप दूर कर दीजिये और शास्त्राधार से जो निर्णय आप देगे उसे मानने मे हमें कोई आपत्ति नहीं होगी। ऐसा कहने से आपकी बात जाती नहीं है किन्तु सरलता प्रतीत होगी। विद्वत्ता का उपयोग और महत्व हठ में नहीं किन्तु आगम की रक्षा मे है।

आचार्य महाराज पूर्ण समदर्शी उद्भट विद्वान्, सिद्धांत शास्त्र के रहस्यज्ञ एवं निश्चय सम्यग्दृष्टि हैं वीतराग महर्षि है। अतः वे जो निर्णय देंगे आगम के अनुसार ही देंगे, आपको महाराज के निर्णय में किसी प्रकार की आशङ्का भी नहीं करना चाहिये। जैसा कि—पं० वशीधर जी ने "यदि आचार्य शांतिसागर जी सञ्जद पद के विरुद्ध निर्णय देगे तो दूसरे आचार्य दूसरा निर्णय देंगे तो किसका मान्य होगा" ऐसी सर्वथा अनुचित एवं अग्राह्य बात रखकर अपनी आशङ्का रखकर मनोवृत्ति का परिचय दिया है। आप विवेक से काम लेवें और अपने बडे भाई के समान कोई बात नहीं कहकर इस विवाद को मिटाने एवं आगम की रक्षा करने में परम पूज्य आचार्य महाराज से ही निर्णय मागें तथा

सजद पद का विवाद सिद्धांत शास्त्र सम्बन्धी है, अतः इसके निर्णय का अधिकार परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज को ही है। कारण कि वे वर्तमान के समस्त साधुगण एवं आचार्य पद धारियों मे सर्वोपरि शिरोमणि हैं, इस बात को हम ही अकेले नहीं कहते हैं किन्तु समस्त विद्वत्समाज, धनिक समाज एवं समस्त साधुवर्ग भी एक मत से कहता है। उनका विशिष्ट तपोबल, अगाध पाण्डित्य, असाधारण विवेक, परमशांति, सिद्धांत शास्त्र रहस्यज्ञता, एवं सर्वोपरि प्रभाव जैसा उनमें है वैसा वर्तमान साधु और दूसरे आचार्यों मे नहीं है। यह एक प्रत्यक्ष सिद्ध निर्णीत बात है अतः अधिक कुछ भी इस विषय मे नहीं लिखकर हम इतना ही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि आचार्य शांतिसागर जी महाराज इस समय के श्री भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी हैं। अतः सजद पद का निर्णय देने के लिये परम आचार्य शांतिसागर जी महाराज ही एक मात्र अधिकारी हैं। उनका दिया हुआ निर्णय आगम के अनुसार ही होगा।

दूसरे—यह कोई लौकिक व्यवहार सम्बन्धी बात नहीं है, लेन देन आदि का कोई आपसी झगड़ा नहीं है, जिसका निर्णय गृहस्थ करें, और आचार्य महाराज बीच मे नहीं पड़ें किन्तु यह केवल शास्त्र सम्बन्धी निर्णय है। उसमें भी धवल सिद्धांत के सूत्र पर निर्णय देना है। गृहस्थों को तो उस सिद्धांत शास्त्र के पढ़ने का भी अधिकार नहीं है अतः वे तो इसका निर्णय देने के

अधिकारी ही नहीं ठहरते हैं। अस्तु।

आचार्य महाराज की सेवा में निवेदन

इस ग्रन्थ को समाप्त करने से पहले हम विश्ववन्द्य पूज्यपाद चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य महाराजकी सेवामें यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि यदि आप सूत्र मे संजद पद के रहने से सिद्धान्त का घात समझते हैं तब तो आपके आदेश से आपके नायकत्वमे बनी हुई ताम्रपत्र कमेटी को सूचित कर तुरन्त ही उस ताम्रपत्र को अलग करा देवे जिसमे वह संजद पद खुदवा दिया गया है। यदि आपकी ऐसी इच्छा है कि 'संजद पद का निकालना आवश्यक है फिर भी अभी चलता हुआ काम न रुक जाय, इस लिये काम पूरा होने पर कुछ वर्ष पीछे उसे हटा दिया जायगा' तब हमारा यह नम्र निवेदन आपके चरणोमे है कि ऐसा विलंब किसी प्रकार भी उचित एवं सह्य होने की बात नहीं है। कारण एक सिद्धान्त विपरीत मिथ्या बात किसी की भूल से यदि परमागम मे सामिल कर दी गई है तब उसे जानते हुए भी रहने देने मे जनता की श्रद्धा मे वैपरीत्य होने की सम्भावना है। इतने आन्दोलन, विचार संघर्ष और सप्रमाण खण्डन करनेके पीछे भी यदि अभी वह पद जुडा रहा तो फिर जनता को समझ एव संस्कार संदिग्ध कोटि में हुए बिना नहीं रहेंगे। लम्बा काल होने से फिर अधिक दलबन्दी का रूप खडा हो जाने से उसका हटाना भी दु:साध्य होगा। और लोगो को ऐसा विचार भी होगा कि यदि संजद पद आगमबाधित एवं विपरीत सिद्धान्त का

पोषक है तो उसे उस समय क्यों नहीं हटाया गया जब उस पर भारी आंदोलन उठा था, क्या तब महाराज को जानकारी नहीं थी, यदि थी तो यह सुधार उसी समय करना था अब क्यों ? फिर लम्बा काल होने से ऐसी बातें भी खडी हो सकती हैं जिनके कारण फिर संजद शब्द को हटाना सर्वथा अशक्य हो जायगा। वैसी अवस्था में प्रोफेसर साहब का वह मन्तव्य कि "सिद्धान्त शास्त्र मे द्रव्यस्त्री की मुक्ति एव श्वेताम्बर मत मान्यता अनिवार्य सिद्ध होती है" स्थायी हो जायगा।

काम चलने के प्रलोभन से एक सिद्धात-विपरीत बात परम-आगम मे लम्बे समय तक रहने दी जाय यह भी तो ठीक नहीं है। चाहे काम हो चाहे वह रुक जाय परन्तु सिद्धात विरुद्ध पद मूल सूत्र स तुरंत हटा देना ही न्यायोचित एवं प्रथम कर्तव्य है। हमारी तो ऐसी समझ है। हमारे उपर्युक्त हेतुओं एवं सम्भावित बातों पर महाराज ध्यान देंगे ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है।

काम चलने के सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि वतमान में जिस रूप में काम चल रहा है वह बराबर चलता रहेगा ऐसी हमें आशा है। यदि त्रिगुणित श्रमफल देने पर भी ग्रन्थ सुधार-णा से काम रुक जायगा तो फिर भी महाराज के आदेश एव उनकी परमागम रक्षा की सदिच्छा से होने वाले इस पवित्र कार्य में कोई बाधा नहीं आ सकेगी। प्रत्युत निस्पृहवृत्ति से बिना कुछ भी श्रम फल लिये इस स्तुत्य परमार्थ कार्य को करने वाले भी अनेकविद्वान तैयार हो जांयगे, महाराजको धवलरूप धवलसिद्धात

शास्त्र के जीर्णोद्धार कार्य मे कोई चिंता का सामना नहीं करना पड़ेगा ऐसा भी हमे भरोसा है। परन्तु कार्य का प्रलोभन सिद्धांत विघात को सहन करा देवे यह बात भले ही थोड़े समय के लिये हो तो भी वह अनुचित एवं अग्राह्य है। जैसे अनेक दिना का उपोषित एवं क्षीण शरीर का धारी अत्यन्त अशक्त साधु भी बिना नवधाभक्ति एवं निरन्तराय शुद्धि सप्रेक्षण के कभी भोजन ग्रहण नहीं कर सकता है। इसी प्रकार कोई भी परमागम श्रद्धानी, उस मे सामिल की गई सिद्धांत विपरीत बात को अथवा लगे हुये अवर्णवाद को बिना दूर किये कभी चुप नहीं बैठ सकता है। इस समस्या पर ध्यान दिलाते हुये हम चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महाराज के चरणो में यह निवेदन करते हैं कि वे शीघ्र ही ऐसी समुचित व्यवस्था कराने का ताम्रपत्र निर्मापक कमेटी को आदेश देवे जिससे दिगम्बरत्व एवं परमागम सिद्धांत शास्त्र की रक्षा अक्षुण्ण बनी रहे। बस इतना ही सदुद्देश्य हमारा इस ग्रन्थ रचना का है।

—ग्रन्थ नाम और उसका उपयोग—

इसका नाम हमने 'सिद्धांत सूत्र समन्वय' रक्खा है। वह इसलिये रक्खा है कि इस निबन्ध रचना से 'संजद' पद ९३वे सूत्र मे सर्वथा नहीं है यह निर्णय तो भली भांति हो ही जाता है। साथ ही इस षटखण्डागम मे केवल भाववेद ही नहीं है, उसमें द्रव्यवेद का निरूपण भी है, आदि की चार मार्गणाओं का विवेचन वेदादि मार्गणाओं से सर्वथा भिन्न है योग मार्गणा का

सम्बन्ध पर्याप्ति के साथ अविनाभावी है आलापाधिकार का निरूपण पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा से है अतः वहां द्रव्य भाव दोनों वेदों का यथा सम्भव समन्वय किया है। इत्यादि सभी विशेष दृष्टिकोण भी इस रचना से सहज समझ मे आ जायगे। अतः इस रचना को दूँ कट नहीं समझना चाहिये, किन्तु सिद्धांत शास्त्र में खचित किये गये सूत्रों का गुणस्थान मार्गणाओं मे यथायोग्य समन्वय समझने के लिये अथवा पटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का रहस्य समझने के लिये एक उपयोगी ग्रन्थ समझना चाहिये। इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम "सिद्धांत सूत्र समन्वय" यह यथार्थ रक्खा गया है।

यद्यपि ग्रन्थ रचना अधिक विस्तृत एव बड़ी है। साथ ही पटखण्डागम-सिद्धांत शास्त्र जैसे महान गम्भीर परमागम के सूत्रों का विवेचन होने से यह भी गम्भीर एव क्लिष्ट है। फिर भी इसे सरल बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। इसलिये उपयोग विशेष लगाने से सर्व साधारण भी इसे समझ सकेंगे। विद्वानों के लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। वे तो इसका पर्यालोचन करेंगे ही। हमारा उन स्वाध्यायशील महानुभावो से विशेष कर गोम्मटसार की हिन्दी टीका का मनन करने वाले सज्जनो से भी निवेदन है कि वे विशेष उपयोग पूर्वक इस ग्रन्थ का एक बार आद्योपांत (पूरा) स्वाध्याय अवश्य करें।

॥ अन्त्य मङ्गल ॥

श्रीमच्छ्रीधरषेणसूरिरचलाद्गेकदेशप्रभुः,

तच्छिष्यावपि तत्समावभवतां सिद्धांतपारंगतौ ।

षट्खण्डागमनामकं सुरचितं ताभ्यां महाशास्त्रकम्,

जीयाच्चन्द्रदिवाकरावित्र सदा सिद्धान्तशास्त्रं भुवि ॥

तोतारामसुतेनासौ लालारामानुजेन च ।

प्रबन्धो रचितः श्रेयान् मक्खनलालशास्त्रिणा ॥

शुभमस्तु ।